वैदिकधर्म



चैत्र सं. २००३
मई १९४६

वार्षिक मूल्य
म. ऑ. से ५) रु.; वी. पी. से ५।=) रु.
विदेशके लिये १५ शिलिंग।
इस अंकका मू. ॥) रु.

क्रमांक ३१७

वैदिक धर्म

विषयसूची

नये ग्रंथ

१ गीताका राजकीय तत्त्वालोचन

श्रीमद्भगवद्गीतामें राज्यशासनसंबंधी जो निर्देश हैं, उनका स्पष्टीकरण करके भागवत राज्यशासनका स्वरूप बतानेवाले दस निबंध। मूल्य २) डा० व्य० ।≈)

२ ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१) मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन। मूल्य १) डा० व्य० ।-)
(२) मेधातिथि ,, ,, मूल्य २) डा० व्य० ।≈)
(३) शुनःशेप ,, ,, मूल्य १) डा० व्य० ।-)
(४) हिरण्यस्तूप ,, ,, मूल्य १) डा० व्य० ।-)
(५) कण्व ,, ,, (छप रहा है)

वैदिक धर्म

क्रमांक ३१७

वर्ष २७ | चैत्र, विक्रमीय संवत् २००३, मई १९४६ | अङ्क ५

कल्याणकी प्राप्ति

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये ।
वयो न वसतीरुप ॥३॥
कदा क्षत्रश्रियं नरं आ वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥४॥

(ऋ० १।२५)

'जिस तरह शामके समय पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर जाते हैं, उस तरह मेरी शान्तिसे भरी स्तुतियाँ श्रेष्ठतम जीवनकी प्राप्तिके लिये उस प्रभुकी ओर जाती हैं। कब हम क्षात्रबलकी शोभासे शोभनेवाले (सारे विश्वके एकमात्र प्रभु) वीर वरुण-देवको उसकी कृपाके लिये अपनी ओर झुकाएंगे, जिसकी कृपा सबपर होती है।'

हम जिस समय परम कल्याणकी प्राप्तिका विचार करते हैं उस समय हमारे मनमें विश्वशासक प्रभुके पास पहुंचनेकी ही बात आ जाती है, क्योंकि वही एकमात्र सब विश्वका महान् शासक है। वह क्षात्र-धर्मकी शूरवीरतासे शोभायमान है, अर्थात् उसके पास जानेके लिये हमें क्षात्रधर्ममें उन्नत होना चाहिये। कोई भीरु उसकी प्रीति संपादन नहीं कर सकता। वह तो सबको सुख देनेको तैयारही है, पर शुद्ध होकर वीर बनकरही उसके पास जाना चाहिये। इस तरह जो जांयगे वे उससे सुख पायेंगे।

विष्णुके प्रभाव

(लेखक— श्री॰ लालचन्द्जी)

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

(ऋ. १।२२।१९; सा॰ १६७१)

उस सर्वव्यापक परमात्माके आश्चर्यजनक कार्योंको देखो, जिन कर्मोंको देखकर जीव सारे ज्ञानोंको प्राप्त करता है। वहही परमात्मा इस जीवात्माका सदा साथ रहनेवाला उसका सखा है ॥

तुम देखको व्यापक प्रभुके,
स्पष्ट कर्मोंको यहां।
तुम हो प्रभुके नित्यसंगी,
ईशके प्यारे सखा ॥१॥
भगवान् के निज तेजको,
आदर्श अपना मान लो।
तेजको, निज ओजको,
आधार अब पहचान लो ॥२॥
सर्वहितकी ठान कर,
संसारमें जीवन भरो।
निज हितोंकी सर्वहितमें,
आहुति दो, प्रेम को ॥३॥
प्रभु कर्मका, सब मर्म,
सीधा सरल होता जायगा।
प्रभुके निकट तुम आओगे,
निज तेज बढता जाएगा ॥४॥
हो नित्य तुम सब अमरही,
अमरत्वके भागी सभी।
प्रभुके निकट होकर सदा,
शुचि प्रेम पाओगे सभी ॥५॥
प्रभु प्रेममें रक्षित सदा,
नित अभय पदको पाओगे।
भयरहित होकर जगत्में,
तुम अमर सब हो जाओगे ॥६॥
तुम अमर-ज्योति हो सभी,
सबके हृदय हों सुख भरे।
आनंद मंगलपूर्ण होंगे,
सुफल जीवन तुम सभीके ॥७॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

(ऋ. ५।५१।१५)

सूर्यचन्द्रके समान हम सुखपूर्वक अपने कर्तव्य-पथपर चलें। हम बारबार दानी, दयाशील, और ज्ञानी पुरुषोंसे मिला करें ॥

श्रद्धासहित सुखपूर्वक,
कर्तव्य-पथपर हम चलें।
आलसरहित नित नियम धारण,
कर सुपथपर हम चलें ॥१॥
कल्याणके पथपर निरंतर,
चांद सूरजसम चलें।
सुन्दर सुखद भावों सहित,
जगमें सुपथपर हम चलें ॥२॥
सुपथमें हम साथमें,
सुहृद्जन लेकर चलें।
शीलवाले, सत्यज्ञानी,
सत्पुरुष लेकर चलें ॥३॥
दयाशील, सुमति, सज्जन,
सुपथमें मिलते रहें।
सहृदय, सुन्दर, प्रेमयुत,
साथी लिए पथपर चलें ॥४॥

जगत्बीज पुरुष त्वशाम

(सर्व जगत्के कुलों, देशों, जातियोंका जन्मस्थान)

(ले०- पं० प्रभूदयाल वैदिक हिस्टारीकल रीसर्चस्कालर-त्वशाम-हिसार)

अन्वेषकने १६ वर्षतक निरन्तर स्वाध्याय कर, प्राचीन वेद व संहिताकी, यात्राद्वारा, और भारतकी अनेक जातियोंके इतिहास पढकर जांचकर बारबार पुराने स्थानोंकी जांच करके ऐतिहासिक जगत्में हलचल उत्पन्न करनेवाली यह नवीन और अछूती खोज तन, मन, धन अर्पण कर प्राप्त की है। जो संसारभरमें प्रथम है। यह प्रदेश अब ऐसी अवस्थामें है।। कि इसे कोई भी देखकर प्राचीन पुरातत्वका केंद्र नहीं जान सकता है। इसीसे यह आजतक विद्वानोंकी आखोंसे ओझल रहता रहा है॥ किन्तु है जगत्का बीज॥

प्रथम अध्याय

संसारके सर्व पदार्थ किसी न किसी प्रकारके बीजद्वारा उत्पन्न होते हैं। बीज बिना कोई पदार्थ नही होता। और सर्व प्रकारके बीज भूमिद्वारा अथवा भूमिसे पोषक पदार्थों द्वारा ही उपजते या बनते व बढते हैं। इसी कारण बीज बोनेका स्थान भूमि (पृथिवी) कहा जाता है। जो बीजको अपने (गर्भ) (उदर)में रखकर बढाती पुष्ट करती और बोये उसे बाहर निकालकर जन्म देती है। और यथा सम्भव बीजकी रक्षा करती है। इसी विज्ञानको जानकर वैदिक ऋषियोंने वेदोंमें बीजको 'पुरुष' पिता और भूमि या पृथिवीको 'माता' व स्त्री लिखा।

इस समयतक संसारभरमें वेदोंको प्रथम पुस्तक स्वीकार किया जाता है। तो यह भी स्वीकार करना होगा कि वेदके रचनेवाले और माननेवाले कमसे कम इस समयके जगत्के प्रथम वंश थे॥ जिन्होंने प्रकृतिका पूर्ण रूपसे अध्ययन किया। और प्राकृत विज्ञानानुसार सर्व वेदोंमें लिख डाला। वेद एक उच्च कोटीका काव्य है। जो कवियोंके नियमबद्ध (छन्दों)में लिखे हुए हैं। जिनमें कवि जनोंके (संकेत) इशारे हैं। अर्थात् वेदकी भाषा-संकेत भाषा छन्दोंमें है। इसी कारण वेदका एकनाम छन्द है यह भाषा उस समयकी प्रचलित भाषा उस देशकी थी। जिस देशमें वेदोंके कवि वंश वसते थे। और वह देश आज हरयाणा हिरण्यगर्भका (हिरण्यथाना) स्वर्गीय देश है। जहांके ग्रामोंके निवासी लोग जो पूर्ण रूपसे अशिक्षित हैं। वेदोंकी भाषाके सौ प्रतिशत शब्द आज स्त्री-पुरुष बोल रहे हैं। जहां हजारों वर्षोंसे अनेक राजा हो गये हैं। और, फारसी, तुरकी, उर्दूके पवंल चक्र चलते रहे हैं॥ निश्चयही यह वही स्वर्गीय देश है। जहां वेद बने थे। और जो द्यु = स्वर्गमें गाये जाते थे॥ जबतक वेदकी कवि शैलीका तत्व और इशारे नहीं समझे जाते। व्याकरणसे वेदका तत्व और सत्य निचोड नहीं मिलता। नह मिला है। नह मिलेगा। क्योंकि वर्तमान व्याकरणसे वेदका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। व्याकरणके बलपर वेदोंकी सत्यता नष्ट होगई है। वेदपर आगे विस्तृत रूपसे लिखा जायगा॥

बीजोंके नाना प्रकार

चाहे अण्डज, जारज, उद्भिज, स्वेदज, अण्डेसे, जेर (झिल्लीसे), पानी व भूमिसे, पसीना या खादसे उत्पन्न सृष्टि कहाती हो। सबके बीज, या (जिरम) हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति, बीज दाना, वृक्ष झाड, पौधे, लता, बेल, झुंडादि, कोई प्रकार हो। वह किसी प्रकार बीजरूपसे जन्म पाते है॥ चाहे वह जलचर, नभचर, स्थलचर, कहाते हों किसी जिरम या बीजसे जन्म पाते हैं। चाहे वह पानी-रूपमें हो; चाहे दाना, शाखा, मूल, फूल खाद, पसीना आदि रूपमें हों। किसी प्रकार बीजरूपमें जन्म पाते हैं। जो भूमि और बीजके मेल होनेसेही

उत्पन्न होते हैं। और बढकर पश्चात् बीजरूप हो जाते हैं॥ इसीका नाम तो ' सृष्टि ' हुवा है। जो सदासे एक बीजसे दूसरी बारका तद्रूप बीज बन जाता है। और यह व्यवहार सदासे प्रवाहरूपसे चला आरहा है। यही प्रकृति तथा (नेचर) कहाती है॥ जो गुण भूमिके होते हैं। वही माताके बाये जाते हैं। इसी कारण पृथिवी नाम माता व स्त्रीका आता है। बीज (वीर्य) पुरुषमें होता है। इसलिये इनका जोडा स्वर्गनिवासी ' **पिता-द्यौ**, और ' **पृथिवी-माता** ' वेदोंमें लिखा गया है। 'शून्याकाश' और 'जड' भूमि जिनका बीच असंख्य योजनका है। पिता व माता जान लेना वेदतत्वको लुप्त करना है। आकाश और भूमिका जोडा बतानेसे तो वेदपर अज्ञानताका दोष आयेगा अतः प्रथम द्यौ, पिताको जानो। और उसके साथ पृथिवीरूप माताका स्थान खोज करो! अन्यथा मेरी इस खोजसे पाया द्यौ, पिता और माता, दोनों साक्षात् साकाररूपमें देखिये। कष्ट पाकर मेरे पास पधारये?।

वेदोंमें ' डार्विन ' की थेवरीका वर्णन नही है। जो बंदरसे, मनुष्य होना बताता है। परन्तु वेदमें जगत्‌की उत्पत्ति ' पुरुष ' से होनी लिखी गई है। वह (पुरुष) कौन है? और कहांपर है? यह जानो ऋग्वेद १०।९० में पुरुष-सूक्त है। जिसमें सर्व प्रकारकी उत्पत्तिका पता है। जहां वृक्ष, भूमि और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि पुरुषके अंगोसे जन्मे लिखे हैं। जो पुरुष सहस्र शिरोंवाला है! क्या ऐसा स्थूल पुरुष देखा नहीं जा सकता? यह तो छुपनेवाला पदार्थ नहीं? अज्ञानवश पुरुष पिताको भूलकर कुछ और बना लिया है। और अन्धेरा ढोने समान हम मूढतामें फंस गये हैं॥ अथर्ववेदके १९।६। सूक्तको ' **जगत्‌बीज पुरुषः** ' लिखा है। जिसके सहस्र शिर, मुख, आंखे और पांवो लिखे हैं। पेटादि, सारे अंग लिखे हैं। खेद है। भारतीय वेद माननेवालोंपर जो इतने पुष्ट स्थूल शरीरधारी पुरुष पिताको नहीं देख सके? यही ' जगत्‌बीज-पुरुष ' अथर्व ३।६। सूक्तपर '**शत्रूनाशक**' नामसे लिखा है। जो राजा है। वीर है। शत्रूका नाशकर्ता बलवान् है॥ जिसे अश्वत्थ नाम दिया गया है॥

जगद्बीज पुरुष स्थान

सब प्राणी जगत्‌बीजसे जन्म पाता है। यह सिद्ध हो चुका। बीज = सन्तान कहाती है। सन्तानके १५ नामोंमें बीजं, अपत्यम्, तुक्, तोकम्, तनयः, तोक्म, तक्म, शेषः, प्रजा, जाः, नपात्, आदि नाम हैं। निरु. नैघण्टु (२।२) हरयाण देशवाले इनको। 'थोक, तनी, तागडी, जाम्, बीज' कहकर सन्तान अर्थमें लेते हैं॥ जगद्बीज सर्व जगत्‌की सन्तानोंका उत्पादक बीज है।

अतः बीजकी बडी प्रशंसा पाई जाती है? पुत्र सन्तान (बीज) कहा जाता है। सत्य निश्चित बातको ' बीजू ' या ' बीज ' बात कहते हैं। वेदमें सन्तान उत्पादककार्यको ' ऋत ' (सत्य) नाम दिया गया है॥ व्योपारी खरीद मालकी रकमके जोड (चिठे)को 'बीजक' कहते हैं। जो सारी खरीदका 'बीज' होता है, निःसन्तान जानेकी गाली ' बीज-नाश ' शब्दसे कही जाती है। किसी भी बोनेवाले पदार्थको ' बीज ' कहा जाता है। किसान उत्तम दाने ' बीज 'के लिये लेता है। बोनेका नाम ' बीजना ' और प्रथम वर्षाका नाम ' बिजाई ' और जिस पात्रमें बोनेका अनाज भरा रहता है वह ' बीजाल ' और जिस थेलीमें भरकर बीजते (बोते) हैं। वह ' बीजोटिया ' कहा जाता है। बीजका 'विजोध्या' नाभिके निचले भागमें (पुरुषचिन्ह) पर बांधते हैं। जो ' प्राकृत ' बीज स्थान है। हल भी प्राकृत चिन्हका रूप है। जिसमें ' फाल ' रहती है। त्रिकोन लकडीकी ' चौ ' लगती है। जो त्रिकोन गहरी लकीर खोदकर बीज डालनेकी है। बांसका पोला (औरणा) कहाता है। जो (औरणनाम) है। जो त्रिकोन लकीरकी बीचकी जगह बीज डालता है अण्डा (वैजा) बीजा है। सबजी (स-बीजी) रूप है। हल = हिलता है। उसमें लम्बी लकडी हाल कहाती है 'हाल' लगती है। जो जुगमें बांधेकर बैलोंकी जोडीके कन्धे पर रहती है॥ लांगुल =(लांगुल) लिंगस्थान-रूप है॥

सर्व मनुष्य तथा चौपाये दोपाये पक्षी आदि प्राणियोंमें सन्तान उत्पत्तिके अंग तथा बीज, वीर्य शरीरके (मध्य भागमें) होते हैं। जो सुरक्षित स्थान है॥ स्त्रीका मध्यभाग सुरक्षित स्थान है। जो गर्भ, कमल, (हमल) सब समानवाची शब्द हैं। अतः जगत्‌बीज स्थान ' मध्य 'में होना ' प्राकृत ' ठैरता है। फिर वा शास्त्रोंमें

उत्पत्तिका कोई साधन नहीं है। मध्यस्थानसे विपरीत हिमालय, तिब्बत, कुतव झुमाली (उत्तरध्रुव) सब भ्रम और भ्रमकी कल्पनाएँ है। ' वर 'को बीन्दराजा वधूको बीन्दनी कहते हैं॥ जो अपने परिवारका (बीज) होते हैं! और बीज बोनेके अर्थही दोनों विवाह करके मिलते हैं॥ अब यह प्राकृत-विज्ञान द्वारा सिद्ध होगया। कि संसारके कुलोंका जन्म मध्यस्थानसे होता है। अतः भारतके मध्यस्थानमें जगद्बीज पुरुष स्थान खोजना, जानना, देखना चाहिये॥ मध्यमेन्द्र मध्यस्वर्ग। मध्यस्थानी देव। भारतके मध्य स्वर्ग पीठमती-अर्थात् अर्ध स्थानमें जन्मे थे। इसीसे प्रथम मध्यस्थानी देव निरुक्तने लिखे है॥

पुरुष कौन है ?

१ पुरुष एव इदं सर्वम् यद्भूतं॥ (अथ. १९।६।४) यच्च भाव्यम्॥ (ऋ. १०।९०।१)
२ राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः॥ (निरु.)
३ जगतो राजा (पुरुषो) बभूव॥ (ऋ. १०।९०)
४ वैश्वकर्मणः पुरुषं॥ (शत. ६।१।४।५)
५ पुरुषो वै...प्रतिमा।यजु.१३।४१;श ब्रा.७।५।१।१७
६ इन्द्रो वै त्वष्टा॥ (ऐ. ६।१०)
७ प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा॥ (शत. ८।३।१।४)
८ इन्द्रः स वायुः (इन्द्रवायू इमे)॥ (शत. ४।१।३।१९)
९ इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः॥ (य. ३३।५०)
१० विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता॥ (सारे जगत्का बनानेवाला विश्वकर्मा है॥) (निरु. दैव. कां.)

(१) यह सारा जगत् पुरुषही है। या (पुरुषमें रहता है)

(२) राजा राजका पुरुष अर्थात् (राजा) निरुक्तने माना है। जिससे भूत, भविष्य और यह सर्व = सारा जगत् हुवा है।

(३) सारे जगत्का राजा पुरुष हुवा है।

(४) वह पुरुष ' विश्वकर्मा ' है। जिसने पुरुष विश्वको बनाया॥

(५) वह पुरुष ' प्रतिमा ' है। राजा है। इन्द्रियवाला (इन्द्रियवान्) इन्द्रियोंसे युक्त (शरीरवाला) सिद्ध है॥

(६) वह इन्द्र राजा ' त्वष्टा ' = बनानेवाला जगत्का कारीगर है। जिसे विश्वकर्मा = सारे विश्वके कार्य करनेसे कहा गया है॥

(७) वह पुरुषही प्रजाका पिता या राजा होनेसे ' प्राजापति ' कहाता है।

(८) इन्द्रही वायुसमान गुणोंवाला होनेसे ' इन्द्र वा वायू ' दो नामोंवाला है।

(९) इन्द्रराजा जो सारे देवोंमें सर्व प्रकार बडा होनेसे ' जेष्ठ ' कहाता है। जिसे ' ज्येष्ठब्रह्म ' नामसे वेदमें लिखा है॥ यह सारे पुरुषके नाम हैं॥ ऐसे सहस्र नाम हैं॥

सहस्र शिरों आदिवाला पुरुष

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥ (ऋ. १०।९०।१)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ (अथ. १९।६।१)

(१) पुरुषके हजार शिर हैं। हजार आंखें हैं। और हजारही पावों हैं। जो भूमि (पक्षि) सहित उसे सर्वत्र ढंककर १० अंगुल्योंपर ठैरा है। विश्वके रचना कार्यके निमित्त वह देहधारी पुरुष स्त्रीसहित पावोंकी यह इस पुरुष चिन्हका संकेत सम्भव है। जो वह पेटसे लम्बा बाहर निकला हुवा है। १० अंगुल्योंपर खडा है।

(२) अथर्ववेदमें हजार शिरके स्थानमें 'सहस्रबाहु' युक्त पुरुष बताया गया है या १० अंगुल्यापर ठैरा है॥ पावों, आंख हजारही है तत्त्व क्या है? भाष्यकारोंकी बुद्धि जब चक्कर खा गई। तब इसे ' अलंकार ' बताकर लोगोंको भ्रममें डाल दिया।

यदि वेद ' निराकार ईश्वर'की रचना होते। तो क्या वह झूंठे अलंकार घडने बैठता? नहीं यह तो सत्य ' साक्षात् ' देखा जा सकता है। अलंकार मिथ्या कथन वेदमें नहीं हो सकते। वह तो साक्षात् पुरुष तुशाम पर्वत है।

इस कवि शैलिके संकेत जब जाने जा सकते हैं। जहांपर यह पुरुष-सूक्त बने थे॥ वहांपर मोकेपर आकर देखें? यह त्वष्टा इन्द्रका पुरुषस्थान राजाकी राजधानी 'परमे व्योमन् ' त्वष्टा नामपर त्वशाम, तुशाम, तैत्रशाम, पर्वत,

द्यौ, पिता है। जो तुषारका पर्वत है। जहां पुरुष त्वष्टा रहता था। पुरुषका स्थान भी ' पुरुष 'ही वेदमें कहा जाता है। इस पर्वत पुरुषको त्वष्टा नामपर (त्वषाम) शीसपुरुष भी कहा जा सकता है। ' तु ' और पु नाम आदित्य व इन्द्रके निकलने माने हैं। तुषार भी कहा जाता है। यही ३३ देवोंका स्थान था। इस कारण तैकलाम भी पुराने लोग कहा करते हैं। या ' शिशिरा ', त्वष्टाके नामपर यह नाम रहा होगा॥ यह पर्वत द्यौ, पिता, पुरुष है।

जहांपर त्वष्टा इन्द्र पुरुषके सहस्र परिवार बसते थे। जो सारे सहस्र (शिरों) युक्त थे। यही यहां (आधे) दक्षिणमें ५०० थे। आधे उत्तरमें ५०० थे। जिनके हजार आंखे हजार पावों थे। जो आधे ' असुर ' पूर्वदेव। और आधे ' देव ' कहे जाते थे। कुल ' सहस्रशिर ' युक्त यह पुरुष था। अन्यथा सहस्रशिरयुक्त पुरुष होनेपर (दो हजार) आंख (दो हजार) पावों कहे जाते। सोचो! समझो? इस कविसंकेतको और ' पुरुष 'के स्थानको जाकर देखो? यह अलंकार नहीं है?

इसका नाम अर्वं = आशा भी है। जो प्रजापति और या इन्द्रके लिये नाम वेदमें आता हैं। इस ' पुरुष 'को यजुर्वेदमें भी सुन्दर, बाहु, हाथ, अंगुलियों युक्त किया है। यह पुरुष साकार (शरीरधारी) पर्वत है। इन्द्रका नाम भी पर्वत और ' पर्वतेष्ठा ' = पर्वतपर रहनेवाला है।

इस पूजनीय पुरुष त्वष्टापर्वतके शिर, मुख, चक्षु, नासिका, बाहु, पेट, जंघा और उरु = ' पुरुष चिन्ह ' विस्तृत (लम्बा) बनाया हुवा है। यह सब घटना स्थानपर देखे जा सकते हैं। अब सारे चिन्ह नाममात्र देखनेको रह गये हैं। हजारों वर्षोंका समय व्यतीत होनेसे बहुतसे चिन्ह नष्ट हो गये हैं। यहांपरही ऋषि और मनुष्योंने मिलकर ' पुरुषयज्ञ ' किया था॥ यहां प्यारे प्यारे देवोंके रहनेके पुरुष पर्वतपर स्थान थे। यही पुरुषके अंग कहे गये हैं॥ इन स्थानोंपर रहनेवाले ब्राह्मण मुख। क्षत्रिय बाहु। वैश्य उरु। शूद्र पावोंसे उत्पन्न माने गये है।

त्वष्टा = विष्णुका नाम ' शिपिविष्ट ' इसीसे है। कि इस ध्रुवपर्वतस्थ विष्णुका यह (पुरुष चिन्ह) भी बना है। हमने इसका पहाडपरसे फोटो लिया था। परन्तु पूर्ण रूपमें उत्तम नहीं आया। पुरुष होनेका यही तो लक्षण है। अन्यथा स्त्री-पुरुषकी पहचान क्या? यही (उरु) ' अन्तरिक्ष ' है। त्वष्टा = विष्णु ध्रुव दिशा (ध्रुवपर्वत) का राजा था। जहांसे अन्य सर्व दिशाएँ स्थिर की गई थी। यह ' केन्द्र ' ध्रुव है।

२४ अङ्गोंवाला पुरुष

१ चतुर्विंशो वै पुरुषः॥ (शत. ब्रा. ६।२।१।२३)

२ दशहस्त्या अङ्गुलयो दशपाद्या-
आत्मार्यङ्गानि पुरुषः प्रजापतिः॥ (शत. ६।२।१।२३)

(१) २४ अङ्गोंयुक्त पुरुष = (देहधारी मनुष्य है। जो मनुष्योंमें जन्मा था) (२) जिसके हाथोंकी १० अंगुलियां और १० (२) पावोंकी (१० अंगुलियां) और ४ शरीरांग। (शीर। बाहू। उरु। पाद्)। सारे २४ अंगोंवाला ' पुरुष ' शरीरवाला है॥

दो पावोंयुक्त पुरुष

१ सो अयं द्विपात्पुरुषः॥

२ सैषा दशाक्षरा विराट्॥ (शत. ११।१।२।४)
इन्द्रो मनुष्येष्वन्र्वर्घर्मस्तत्सञ्चरति शोशुचानः॥
(अथ. ४।११।३)

३ अजातो नु शतक्रतुः वि पृच्छदिति मातरम्॥
क उग्राः केह शृण्विरे॥ (ऋ. ८।७७।१)

४ आदीं शवस्यब्रवीत् ' और्णवाभं अहीशुवम्॥
ते पुत्र सन्तु निष्टुरः॥ (ऋ. ८।७७।२)

' यह ' = (प्रत्यक्ष वाची) पुरुष दो पावोंवाला है॥ जो १० अक्षरयुक्त होनेसे विराट्पुरुष हुवा है।

(२) राजा (इन्द्र) (अयं) मनुष्योंमें मनुष्यों समान जन्मा और उनमेंही रहता है। जो सूर्य समान तप्त है॥

(३) इन्द्रने जन्मतेही अपनी मातासे पूछा। लोकोंमें ' उग्र ' और ' बलवान् ' कौन है? उसने कहा कि। और्णवाभ और अहीशुव यह दुष्टवंशकेही नाम हैं।

इन्द्रने जिसे धोखासे मारा था ॥ वहां वह भी सिद्ध हो रहा है। कि इन्द्रका जन्म हुआ था। उसकी माता थी। और जो मनुष्य समान जन्मा था। तथा इसके जन्मसे पूर्व अन्य उपरोक्त नामके वहां राजा थे। इनके मारने-पर इन्द्र देवोंका राजा बना था जो लोग इन्द्रको तथा पुरुष विराट्को (निराकार) ईश्वर लिखते हैं ! उनकी किस प्रकार बड़ाई की जावे ? वही बतावे ? वेदकी इतने खुले और स्पष्ट शब्दोंमें विस्तृत व्याख्या होनेपर भी निराकार कहना सर्वथा वेदविरुद्ध हैं ॥

'जगद्बीज पुरुष' पुरुषाकार अङ्गोवाला मनुष्य वेदसे सिद्ध है। जिसके हजारों परिवार शिर, आंख, पावों, की संख्यावाले थे। जिसके (पुरुष चिन्ह) होनेसे ही वह पुरुषबीजवाला (शिपिविष्ट) नामवाला और प्रजाके 'उरु' सहित देखा जा सकता है। जिसके १४ अंग और २ पांवोंवाला मनुष्याकार शरीर था। जिसने अपनेसे पूर्वके राजा 'वृत्र'को चालाकीसे मारकर स्वर्गका राज प्राप्त किया था ॥ इस सारी सप्रमाण व्याख्यामें किञ्चित् भी कहीं शंका नहीं रहती। अतः वेदकी दुहाई देनेवाले सोचें ! घटना स्थानपर पर्वतपर दो पांवों हैं। उनकी बीच, लम्बा (उरु) बना है ॥ आइये देखिये ॥

बीजपुरुषकी पहचान्

(१) पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥
(अथ. ६।११।२)

(२) शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ। लोमशः पुरुषः
स्मृतः ॥ (निरु. दै. ९।२।२)

(३) पांक्त छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः
सह सं भवेम ॥ (अथ. ११।३।१०)

(४) शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥
(अथ. ६।११।१)

(५) त्वष्टा वै रेतःसिक्तं विकरोति॥(श.१।९।२।१०;
कौ. १९।६

(६) अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु
भुवनेष्वन्तः। अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं
जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ (ऋ. १०।१८३।३)

(७) पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा ॥ (वा. य. २४।३१)

(४) अश्वत्थ वृक्ष जहां 'शमी' पर चढ़ा हुआ है। वहां प्रजा उत्पत्ति कार्य करनेसे निश्चयसे पुत्र होता है। वह हम स्त्रियोंमें भर देते हैं ॥ (वीर्य सींचनेकी क्रियासे) 'वानस्पत्योऽश्वत्थः ।' (अथ. ३।६) अश्वत्थेऽतिष्ठत् इन्द्रो, मरुत, उपामन्त्रयत ॥ (शत. ५।३।५।१४) वनस्पत्योंका राजा अश्वत्थ (पीपल) है। जो इन्द्र व मरुत देवोंका संकेत है। इन्द्रमरुत्वान्का वह स्थान अश्वत्थ = पर्वत है। शमी = शमी है। जो शमन = यमकी स्त्री है। वेदमें शमी = सहस्रपर्णा लिखी है। जो अदिति सहस्र परिवारों युक्त है ॥ यही 'अदिति' पृथिवी है। यही 'अपभरणी' है। जो राज्ञी = इन्द्राणी है। इसका नाम 'योनि' है। गायत्री भी यही है। गाई जानेसे ॥

(१) पुरुषोंमेंही वीर्य होता है। जो स्त्रियोंमें सींचा जाता है। तो पुत्र उत्पन्न होता है। यह प्रजापतिने कहा है।

(२) पुरुष (शेप) जननेन्द्रिययुक्त रोमोंयुक्त होता है। जो रोमोंवाले भेदस्थानको चाहता है। पुरुष स्त्री मिलापका यह वर्णन है ॥

(३) पांक्त छन्द पांचों दिशाओंका स्थान 'पुरुष' राजा बन गया। सारे विश्वजगत्का वही अंग भी बना है। यह त्वष्टाका लोकामपर्यंत पुरुष सर्व देवोंका अंग बना था। जहां पुरुष पांचों दिशाओंपर पूषा नामसे राजा था ॥

(५) त्वष्टा वीर्य सिञ्चन कर्ता और गर्भकर्ता सर्व देवोंका पिता है। यही द्यौपिता-पृथिवी (अदिति) माता है।

(६) मैं (त्वष्टा) सबका पिता विश्व भुवनके अन्दर रहता हूं। और औषधि नामक (अप्भावों)में गर्भधारण करता हूं। मैं प्रजाओंको जन्म देनेवाला हूं। मैं पृथिवी = आदितिमें और अन्य देवपत्नियोंमें पुत्रोंको उत्पन्न करता हूं।

(७) त्वष्टा देव तेरा स्थान पुष्कर = (कमल है) यह कमलाकार अष्टपर्णोंवाला पुष्कर पर्वत है। जो त्वष्टाका स्थान है। यहांपर दोसहस्र वर्ष प्राचीन विष्णु सम्बंधी लेख है। जिसके नीचे 'कमल' (फूल) खुदा है ॥ जिसपर (विष्णु)को विराजमान किया गया है। यह लेख कनिंगहमसाहबने १८७५में लेकर छापा है॥

विश्वतो चक्षु पिता

यहांतक पुरुषके रूप मनुष्याकार राजाके पाये गये। जो 'राजपुरुष' है। 'इन्द्र' है। जो राजा है। 'त्वष्टा'= 'विश्वकर्मा' भी राजा है। जो शिल्पिकार कारीगर राजा सिद्ध है॥ बाकी सारे नाम कवियोंके कहे 'बहुत नाम' हैं। जिनके सहस्र परिवार थे। इसी कारण 'सहस्राक्ष' नाम राजा 'इन्द्रका है' अथवा इसके राज्यस्थान तोशामपर्वत स्वर्गको भी 'चक्षुः' बताया गया है। इस पर्वतका नाम वेदमें 'चक्षुःपर्वत'-नाम भी लिखा है। और इसेही 'सहस्राक्षदेव' भी लिखा है।

१ तां मे सहस्राक्षो देवाः ॥ (अथ० ४।२०।४)

२ चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ॥ (अथ० ४।१४।५)

३ चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत 'पर्वतः।' चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ (ऋ० १०।१५८।३)

४ कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ॥ (अथ० ४।२०।७)

(१) (सविता) सहस्र आंखवाले देवने दृष्टि मेरे दक्षिण हाथमें दी है। इस सूक्तका देवता मातृनामा (अदिति) है।

(२) तू देवों और मनुष्योंका चक्षु है। (जहांसे दूर-तक सब देखते थे) इससे 'सहस्राक्ष' नाम बना।

(३) सविता (त्वष्टा) देव चक्षु दे। चक्षु 'पर्वत' चक्षु देवे। धाता देव मुझे चक्षु देवे।

(४) तू कश्यप (सूर्य) का चक्षु है। और देव शुनि (अदिति) ४ आंखवालीका भी तू चक्षु है। यहां के तू राजा 'नृचक्ष' इसी कारण कहाते थे। जो इस पर्वत चक्षुसे सारी दिशाओंको दूरतक देखते हुवे राजप्रबंध करते थे ॥

(५) चक्षुषः 'पिता' ॥ (वा. य. ७।२९)
पिता = चक्षु है

(६) विश्वतो चक्षुः (विश्वकर्मा) ॥ (ऋ. १०।७।३४)
विश्वकर्मा = विश्वभरका चक्षु है।

(७) चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् (ज्येष्ठब्रह्म)।
(अथ. १०।७।३४)

ज्येष्ठब्रह्मके चक्षु अङ्गिरस है।

(८) चक्षुर्मुसलं (काम उलूखलम्) (अथ. ११।३।३)
चक्षुमुसल उरु लोक है।

[द्यौपिता-भूमि माता] त्वष्टापर्वत (चक्षु पर्वत है)

(९) चक्षुरुष्णिक् ग्रीवा इत्युष्णिक् छन्द सविता देवता ॥ (शत. १०।३।१।२)

चक्षु-ग्रीवा उष्णिक्छन्द सविता देवके हैं। (यह ऊपर पर्वत शिरभाग है) ॥

यह जगत्बीजपुरुष जो (द्यौपिता भूमिमाता) और जो चक्षुद्वारा देखनेमें 'मूसल' रूप खडा पर्वत है ॥

इस त्वष्टा इन्द्रको (पर्वतेष्ठा) भी लिखा है। जगद्बीज पुरुष। दो पावोंवाला। २४ अंगोवाला। विराट्पुरुष। सारे जगत्का राजा। प्रजापति। पुरुष। मनुष्योंका तथा देवोंका राजा सिद्ध होता है। और जो (पांचों दिशाओं) तथा पांचो प्रकारके मनुष्योंपर राज्य करनेवाला राजा सिद्ध हो चुका है ॥

इन्द्र-वायू। नाम इसी त्वष्टा पुरुषके हैं। जो प्रत्यक्ष ब्रह्म=ज्येष्ठब्रह्म आंखोसे दीखता राजा है ॥

नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं, ब्रह्माऽसि, ॥ ५.

पुरुषके यहां कुछ नाम ऐसे आ चुके हैं। जिनसे पुरुष या (जगत्बीजपुरुष) तनधारी मनुष्य शरीरवाला राजा प्रत्यक्ष देखनेमें आनेवाला है। जो निराकार नहीं कहा जा सकता। और नहीं निराकार नाम पुरुष या किसी अन्य देवका वेदोंमें मिलता है। तो वेदके अर्थमें 'निराकार' नाम विरुद्ध ठैरता है।

वानस्पत्योऽश्वत्थः

मनुष्याकार पुरुषसे विपरीत यह नाम 'जगत्बीजपुरुष'के लिये 'वानस्पत्योऽश्वत्थः' (वनस्पतियोंका राजा अश्वत्थ) (अथ. ३।६) सूक्तमें है। जो 'शत्रुनाशक' लिखा है। इसे कितनेही वेदभाष्यकर्ता 'पीपल वृक्ष' ही समझते हैं। किन्तु यह कवि 'संकेत' है। इसपर यहां कुछ विचार करना आवश्यक है ॥

१ पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि। स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ।१।

१ तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदि मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥
३ यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे।
एवा तान्त्सर्वान् निरभङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ३ ॥

४ यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान्।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च॥६॥
५ प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखायाश्वत्थस्य नुदामहे ॥ ५ ॥

१ जैसा खैरके वृक्षपर अश्वत्थ वृक्ष होता है, वैसा वीर पुरुषसे वीर उत्पन्न होता है। वह मेरे शत्रुओंका वध करे, शत्रु वे हैं कि जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं।

२ हे अश्वत्थ ! उन विविध बाधकोंको मार डाल और वृत्रघातक इन्द्र मित्र वरुणसे मित्रता कर।

३ हे अश्वत्थ ! जैसा बडे समुद्रमें तू भेद करता है वैसे सब शत्रुओंका तू नाश कर।

४ हे अश्वत्थ ! जैसा तू ऊपर रहता हुआ अन्य वृक्षोंको नीचे करता है वैसा मेरे शत्रुओंको तोड और उसको जीत लो।

५ इन शत्रुओंको मैं मनसे हटाता हूं। मैं चित्त और ज्ञानसे हटाता हूं। अश्वत्थ वृक्षकी शाखासे मैं शत्रुओंको हटाता हूं।

वनस्पतियोंका राजा सोम भी लिखा है। जो 'इन्द्र' ही है। वनस्पतियां = अप्सरायें होती हैं। जिनका राजा इन्द्र = अश्वत्थ है।

अश्वत्थ कौन है ?

१ 'अश्वत्थो देवसदनं' तृतीयस्यामितो दिवि
'कुष्ठो अजायत'। (अथ. ११।३।७)
२ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पुरुषम् (ऋ. १०।९७।५)
३ इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः (ऋ. १०।८७।८)

४ राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।'
(अथ. ४।२६।२)
५ तत्रामृतस्य चक्षणं ततः 'कुष्ठो अजायत' ॥
(अथ. १९।३९।८)
६ उतेयं भूमिः वरुणस्य राज्ञः।
'यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥' (ऋ १।१३।५)
७ शीर्षलोकं 'तृतीयकं' (अथ. १९।३९।१०।)
८ शीष्णो द्यौ समवर्तत ॥ (अथ. १९।६।८)
९ सवंत्सरः शिरः ॥ (अथ. १५।१८।४)
१० इन्द्रो शिरः अग्नि ललाटे ॥ (अथ. ४।७।१)
११ मृगशिर नक्षत्रं सोमो देवता ॥ (तै. सं. ४)
१२ दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले (अथ १९।१८।५)
१३ ते कुष्ठिकाः सारमायै ॥ (अथ. ९।४।१६)
१४ त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ॥ (अथ. १९।३९।२)

(१) तीसरे द्युमें देवोंके रहनेका देवसदन 'अश्वत्थ' है। जहां अमृत समान देखनेको 'कुष्ट'ने जन्म पाया है॥

(२) ओषधियों (अप्सरागण) तुम्हारा स्थान अश्वत्थ और पलाश वृक्ष पर है। जिसमें तुम रहती हो। जब तुम मनुष्यपर अनुग्रह कर उसकी पीडा दूर करती हो। उस समय तुम्हारी पूजा गौ देकर करनी चाहिये।

(३) तुम्हारी माताका नाम इष्कृत (पीडा कष्ट नाश करनेवाली) है। इसकारण तुम भी रोग-नाश करती हो॥

(४) तीसरे द्यौ = स्वर्गका राजा वरुण सम्राट् है॥

(५) जहां देखनेको अमृतसमान 'कुष्ट' जन्मी।'

(६) जहां राजा वरुण की भूमि (पत्नी) है। जहां अमृत समान देखनेकी 'कुष्ट' नामक देवी है॥

(७) तीसरा द्यौ = स्वर्ग 'शिरलोक' (सहस्र-शिरोंयुक्त) 'पुरुष' है।

(८) जिस पुरुषका 'शिर = द्यौ' कहाता है।

(९) संवत्सर = राजा शिर है।

(१०) शिर = इन्द्र है। और वहां अग्नि = यम ललाट = मस्तक समान हैं।

(११) मृगशिर = (मृग-इन्द्र = सिंह) समान शिर है। जिस देवता सोम राजा 'इन्द्र' है। जो सोम पर्वतके ऊपर रहता है।

(१२) दिति और आदिति = यह दोनों शिर और कपाल समान (स्वर्गपर्वत) पर रहनेवाली 'एक' दो रूपवाली है।

(१३) वह अदिति ही 'कुष्ट'= अमृतसमान है। जिसे 'सरमा' तज दाबनवाली- 'देवशुनी' = और देवमाता कहते हैं।

(१४) हे 'कुष्ट' तू (३) नामों वाली है।
(आगे अर्थ आप लिखें)

यहां पता चला कि 'अश्वत्थ' देवोंका (सदन) स्वर्ग-स्थान है। जहां कुष्ट (= अदिति) का जन्म हुआ था। वहां पर वनस्पति = (अप्सरागण) स्वर्ग-ज्योतियां भी उसी अश्वत्थ या (प्लाश) वृक्षोंसे छाये पर्वत स्वर्ग में निवास करती है। जो कामवासनाके रोगोंको नष्ट करनेवाली हैं। उनकी माता भी इसप्रकारके रोग व कष्ट नाश करनेसे आरोग्यता प्राप्त करानेवाली ओषधि-समान है। ओषधियोंकी माता = अप्सरागणकी माता है। अमृतसमान इनके दर्शन होते हैं। तीसरे (द्यौ) पर्वतके ऊपरका भाग राजा 'वरुण' है। अमृत समान रूपोंको देखनेका यह स्वर्गस्थान था। यही 'शिर' लोक है। जो मृग = सिंह इन्द्रका सोम राजाका स्थान है। यही स्थान दिति या अदिति एकके ही दो नाम 'शिर' और 'कपाल' रूपमें तोशाम स्वर्ग-पर्वतके हैं। जो पूर्व समय दैत्यों असुरोंको जन्म दे चुकी थी। जो पूर्वदेव कहाते थे। उसी कारण अदिति पूर्वचित्ति 'पूर्वाहूत' कही है जो पूर्वमें निर्ऋति = दिति थी = भूमि-माता कहाती थी। जो दिति नहीं रही तो (अ-दिति) कही जाने लगी॥ उरुवशी भी इसका नाम हुआ। अदिति उरुशर्मा॥ (यजु० १०।९) उरू नामके पुरुष पर्वत (उर्वऽन्तरिक्ष) के आश्रय रहनेसे वह नाम है। 'पुरुषाकृति-विशेष' जगत्बीज पुरुष पर्वतपर लम्बा विस्तृत बना हुवा है। यही सरमा-कुष्ट-देवशुनि कही गई है। जो द्यौ-भूमि-अन्तरिक्ष-पिता-माता सब कुछ कही गई है। सो यह सब नाम जगत्बीज पुरुष त्वष्टा इन्द्र पर्वतेश वा 'पर्वतरूप' प्रत्यक्ष मनुष्याकार तोशाम् पर्वतके हैं।

शत्रुनाशक पुरुष अश्वत्थ

१ यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति॥
(ऋ. १०।१३५।१)

२ क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः 'पर्वता पलाशयः'
(अथ. ४।७।११)

३ माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
(यजु. २३।२४--२५)

४ ब्रह्म वै पलाशो०। ऊर्गुदुम्बर ऊर्ग् वै पुरुष स्वं भवति०। मित्रेण वै राजन्यः प्रतिष्ठित-
स्तस्मान्नैयग्रोध०।
अश्वत्थे तिष्ठत इन्द्र मरुत उपामन्त्रयत
तस्मादाश्वत्थेन वैश्योऽभिषिच्यते॥
(शत. ५।३।५।१३-१४)

(१) सुन्दर पत्तोंवाले पलाश (ढाक) वृक्षमें यमराजा देवोंके साथ पान करता है। जो (पिता) है, प्रजा व घरका स्वामि है। हमारे पुराने पूर्व पितरोंको प्रसन्न करे॥

(२) पर्वतकोही पलाश नाम दिया गया है। जो यहां तोशाम पर्वतपर पलाश, अश्वत्थ वृक्ष सर्वत्र छाये हुवे थे। और यह स्वर्गपर्वत इन सुन्दर वृक्षोंसे ढका रहता था। और कुछ दूरीसे देखनेपर पलाश या अश्वत्थ वृक्ष समान ज्ञात होता था। कवियोंने इन वृक्षोंको देवोंका स्थान तथा वनस्पतियों अप्सराओंका संकेत और घर बना दिया।

(४) इन संकेतों द्वारा ब्रह्म = उदुम्बर। मित्र क्षत्रिय-राजा = न्यैग्रोध (वट या बड) और अश्वत्थ = इन्द्र, मरुत्, तथा वैश्य, इन्द्र-मरुत्वान् और मरुत् वैश्य भी कहानेसे। इन वृक्षोंसे देवोंका सम्बंध रखा गया है।

(३) तेरे माता और पिता अग्रवृक्षपर चढते हैं। प्रथम वृक्ष तोशामपर्वतको पलाश, अश्वत्थ, जगत्पिता-रूप कहा गया है, जो इन्द्र व मरुत्सखा शत्रुगणका नाश करनेवाला राजा था। समुद्र और सात नदियोंके स्थानका राजा होनेसे वरुण कहा गया है॥ यही पुरुष अश्वत्थ-इन्द्र (जगत्बीज) है। जो शत्रुनाशकर्ता है। जिसने अपनेसे बडा कोई राजा नहीं रहने दिया था। इस कारण वह 'ज्येष्ठ' और ज्येष्ठराट्-सबसे बडा राजा हुवा।

भाष्यकारोंसे निवेदन

वेदोंकी भाषा संकेतों (इशारों) की कविभाषा है। जो छन्दोंमें होनेसे 'छान्दस्' कहाती है। यह भाषा आज हिरण्यमयाना (हरयाणा) देशमें अशिक्षित, ग्रामोंके रहनेवाले जमींदार 'जाट' बोल रहे हैं। जिनकी बोलीमें प्रतिशत शब्द वैदिक छान्दसके होते हैं। तोशाम हरयाण देशका और भारतका 'मध्य' स्थान है। जिसके आस-पास वेदवाणी बोली जाती है। तोशाम त्वष्टा का 'परम व्योम है।' जहांपर सारे अक्षर और वेद (छन्द) रहते थे। इस कारण यह देश वेदभाषाभाषी है। महाभारत कालमें नकुलने दिग्विजयके अर्थ इस देशपर धावा किया था। तब यह संकेतभाषी 'पुष्कर प्रान्त'में थे। जिनको 'उत्सवसंकेत' नाम दिया गया है। देवोंकी भाषा भी ऐसीही थी। जैसा कि निरुक्त व ब्राह्मण लिखते हैं। कवि-भाषा संकेत होते हैं। क्या कारण उनका तत्व-अर्थ नहीं दे सकता।

'परोक्षप्रिया इव हि देवा प्रत्यक्षद्विषः ॥'

(ऐ० ३५।३०; तै० १।९ ,

देवगण परोक्ष (पोशीदा छुपे तौरकी बोली) बोलनेकी बोलीको प्यारी जानते हैं। जो खुली बोलीसे द्वेष करते हैं। यही तत्व। गाहे दोहे (जिनके दो अर्थ हो सकें) झूलने। (जिनका मतलबही न मिले) अर्थ (झूलताही रह जावे)। दृष्टकूट = (जिनका कोई अर्थ नही किया जा सके) इतने कूट छन्दोंमें रहता है। अतः व्याकरण वेदके ऐतिहासिक तत्वको नहीं जान सका। नही जान सकता है। संकेत समझो ? यथा = ४ मिले ६४ खुले। १० मिले कर जोड ॥ ७२ रोंको तृप्ति हुई। चातुर करो निचोड ॥

'दो मित्रोंको मिलते देख कविने यह दोहा रचा। प्रथम दोनोंकी ४ आंखें मिलीं। दोनोंके ६४ दांत खुले खुले बोलने लगे। दोनोंकी हाथोंकी १० अंगुलियां मिलीं। दोनोंकी ७२ नाडियां प्रसन्न हो गईं। वेदोंमें ऐसे बहुत छन्द हैं ॥

पूर्व समय हरयाणा देशमें यह कविता ग्रामोंमें बहुत चालू थी। ऐसी कविताके अर्थ करने-करानेको पंचायतें वार्ते रखती थीं। और एकसे दूसरे ग्राममें शास्त्रार्थ करने जाती थीं।

त्वष्टा एकदेव

(दूसरा अध्याय)

[१] पहला, प्रथम, १ होता है। प्रतिपद्=फर्स्ट = प्रथम या १ नम्बर कहता है। १ = से संख्या आरम्भ होकर सहस्रों अर्बों बनती हैं। जगत्बीज पुरुष इन्द्र त्वष्टा = सबको बनानेवाला विश्वकर्मा सारे जगत्को बनाने रचनेवाला सर्वस्वकर्ता वेदसे सिद्ध है। जो जगतभरका एक पिता व एक राट्, सबका एक राजा था।

इस एक-देवके बहुत नाम वेदमें लिखे हैं। जो इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, आदि सहस्रोंतक हैं, इस कारण 'एक सत्य' नाम त्वष्टाका है। 'जगत्बीज' यही त्वष्टा है। जिस नामपरही तोशाम पर्वत है। यहां इस पर्वतपर जब कि सर्वत्र पानी ही पानी था, समुद्रके मध्य 'सलिलस्य मध्ये' इस ध्रुव पर्वतपर जो हराभरा अश्वत्थ या पलाश समान कमल-स्थान था। चारों तर्फके समुद्रोंके बीच प्रजायें उत्पन्न की। यहांसे सारा जगत उत्पन्न होकर चारों दिशामें एशिया और योरूप तकके देशोंमें फैला है ॥ यह एक सत्य या एक परिवार जो एक-रूप था। कई रूपों व नामोंवाला हो गया। वही 'क' प्रजापति कहा गया। जो एकसे 'कई' रूपों नामोंवाला हो गया था। वही 'हिरण्यगर्भ' नामका वेदमें 'क' प्रजाका पति है। जितने नाम वेदमें इस एकसे बने हैं। उतनेही नाम इसके स्वर्गस्थान पर्वतके भी मिलते हैं।

जिसका गर्भ स्वर्णका अथवा जिसके वंश स्वर्णसमान रूपवान सुन्दर थे वह हिरण्यगर्भ बना, उसका यह स्थान हिरण्यवर्त (हिरण्यमयाना) ही अब हरयाण कहाता है। जो ज्येष्ठ ब्रह्मका होनेसे, ज्येष्ठब्रह्म भी है। यही दृषद्वती (घग्घर और सरस्वती दो देवनदियोंके बीच) देवोंका बसाया ब्रह्मावर्त कहता रहा है। घग्घर उत्तर पश्चिममें अब भी है। जो कभी बीकानेरसे आगे समुद्रमें गिरती थी। सरस्वती पूर्वमें बहती थी। हरयाणाके ३ भाग माने गये हैं। १ स्रोत्र (स्रोत) घग्घर प्रान्त। एकमध्य मैदानी प्रान्त (हरयाना)। तीसरा 'बागड्' बालू-रेतवाला, जो

सुख गई है। हो वाग् (वाणी) अपभरणीका राज्यभाग था। 'ऊर्णम्रदा' जो बन जैसा नरम रेतका भाग, (षोडशी) का जहां 'षोडश' स्तोम है। जो अब इस देवीका स्थान 'खेडा' कहाता है। जिसे ऐतिहासिक 'स्त्रीराज्य' नामसे नहीं पास के, जहां यह देवी अब एक मन्दिरमें पूजी जाती है। यहां जाकर रहनेवाला शत्रुसे रक्षा पाया करता था ॥

'द्यौपिता-पृथिवीमाता' यह तोशाम पर्वतही है। जिसे द्यावापृथिवी-अदिति लिखा है। इसी त्वष्टा एक-देवने इस पर्वतको काटकर अष्टचक्रा और सप्तसिन्धु तथा द्यावापृथिवी का रूप दिया था, जिसे हमारे विद्वान उत्तर ध्रुवके अन्धेरेमें और ईरान काबुलमें या पंजाबके दरियावों साथ गङ्गा-यमुना जोडकर टटोलते हैं। इस पर्वतका दक्षिणभाग द्यावापृथिवी और उत्तरभाग विश्वेदेव कहा गया है। यहांके दक्षिणमें सारे ग्राम वैदिक पितरोंको नाम पर बसे मिलते हैं। और इसी नामके वंश भी है। यह 'पितरलोक' है। यहां १॥ कोसपर 'संगमनी' पहाडी एक थेठके साथ है। उत्तरके यहां देवोंके नामों पर ग्राम व नगर हैं। आकर मोकेपर जांच कीजये। और जगतकी मातृभूमि देखिये ॥ जिसके देखनेके लिये काष्टमें बंधा 'शुनःशेप' ऋषि ऋग्वेदमें इतिहास रच गया। और 'ऋषि' कहा गया ॥ बलिदानार्थ जिसे पिताने १०० गौके बदले बेचा था।

यह पर्वत पूर्वभाग 'मित्रदेव' और पश्चिमका 'वरुण' राजा है। पूर्वभाग 'उषा' = दिन और पश्चिम 'रात्री' होनेसे 'मित्रावरुण' है। और दिन व रातके मालिक होनेसेही दिनरात = अहोरात्र--नासत्यौ--'अश्विनौ' प्राण--अपान कवियोंने बना दिये हैं। जो 'साध्यगण' भी है। देवोंके वैद्य हैं। पर जिन्हें हमारे विद्वान नहीं जान सके हैं। ध्रुवमें नीचे भाग पर 'विष्णु' नामसे त्वष्टाराजा है। ऊर्ध्व पर्वत शिखरका 'सोम' = बृहस्पति राजा है। जो उत्तरका भी है। पाक्तं सबका अंग यही त्वष्टा राजा पांचों दिशाओंका राजा छन्दरूपसे बता दिया गया है। यह सर्व नाम यहां स्थानोंके वर्तमान है।

यह स्थान जगत्के मातापिता जन्मदाता कैसे बना। यह ज्योतिष और सृष्टिविज्ञान या नेचरल साइंस है, नक्षत्र-विज्ञान है। और जगत्के प्राणि 'योनि'से जन्म लेते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, माताकी योनिसे जन्मते हैं। जो 'त्रिकोनाकार'ही है। और जो सबके शरीरोंके मध्य जंघावोंके मध्य सुरक्षित स्थान है। हिन्दु इसी प्राकृत विज्ञानकी पूजा शिव-शक्ति' रूप करते हैं।

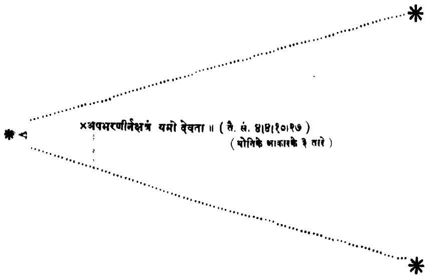
त्वष्टा देवने इस पर्वतपरसे इस विज्ञानमय रहस्यको लम्बे समयके निरीक्षणसे जाना था। जिसका पता यह है कि यहां इस पर्वतपर 'भरणि' नक्षत्र रातभर रहता है। जो 'त्रिकोनाकार' है। यह (योनि) के रूपके ३ तारे हैं। जिनका गुण व स्वभावविशेष 'भरण पोषण' की शक्ति रखनेसेही। यहां सन्तानें उत्पन्न कीं। जो सारे जगत्-भरमें फैली गई हैं। यों इस (अदिति) का नाम 'वाग-अपभरणी' और 'योनि' हुवा। जो सारे जगतकी (जननी) योनि है।

'अपभरणीः नक्षत्रं यमो देवता'॥ (कृ. य. तैत्तिरीय सं. ४।४) अर्थात अपभरणी नक्षत्र जो योनिरूपवाला ३ तारों का त्रिकोन नक्षत्र है। उसका देवता (स्वामि) राजा यम है। 'युग्म' = यमज (जोडा) है। जो शमीमें अश्वत्थ है। यही पिता द्यौ और माता भूमि। या यमी। दक्ष-अदिति और अदिति दक्ष है। यह सब कवियोंने कह डाला है। इस पर्वत स्वर्गपर २८ नक्षत्रों समान नामोंकी अप्सरायें रहती थी। जिनके नामोंपर हरयाणा देशमें उसी आकारके नगर बसे हैं ॥

अपभरणी-वाग्[+]

योनिः = जन्मस्थान

सर्व जगत्की उत्पत्तिका स्थान शरीरका मध्यस्थान है। तथा उत्पत्ति और पालन-पोषणके सर्वांग मध्यमेंही बने हैं। यह प्राकृतिक विज्ञान वेदकालीन देवोंने विशेष रूपसे अध्ययन किया और एक लम्बे समयतक भूगोल तथा खगोल विज्ञानकी जांच की। और नक्षत्र-विज्ञानको अध्ययन कर यह जाना कि अपभरणी नक्षत्र मध्यस्थानमें (योनिः) समान है। जिसका स्वाभाविक गुण भरण-पोषण-उत्पत्ति व पालन-शक्तिका केन्द्र है। वहांपर इसीके नीचे त्वष्टा-पर्वतपर सृष्टि-रचना की॥ मध्यलोकस्थ देव प्रथम मुख्य रूपसे जन्मे हैं॥

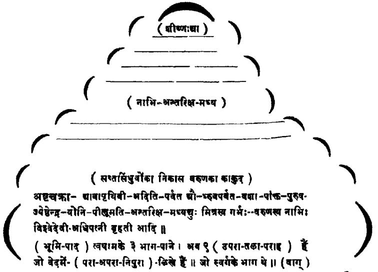


१ योनिमेकः॥ अग्निः॥ (ऋ. ८।२९।१), २ योनिः = चतुर्विंशः॥ गायत्री॥ (वा. य. १४।२३)
३ योनिः = नाभ-पञ्चमः प्राणो (योनिः) मात्यस्य आपः॥ (अथ. १५।१५।७)
४ योनिः = (माता) - अदितिः माता॥ (निरु. ४।४।२) ५ योनिः = अपभरणीः-(योनि आकार) ३तारे॥
भरण-पोषण-गुण स्वभावयुक्त॥

× इसको ज्योतिषी-भरणी कहते हैं। यह नक्षत्र पूर्व दिशामें उदय होकर वर्षाकालमें मध्यमें शीघ्र दीखता है। पश्चिममें अस्त होता है। यथा सम्भव इसी नामपर-' भवाणी ' = (भवानी) नगर है। निकट (वापोडा) ग्राम है। दोनों-वापोडा भवाणी = अपभरणी-सम्भव हैं। ल्हवसे पूर्व ८ से १२ कोस अन्तर है। ऋग्वेदमें यह " वागम्भृणि " नामकी देवी लिखी है॥

जगत्-बीज पुरुष

(त्वषाम-पर्वत)



+ इस पर्वतके पश्चिममें एक मीलपर ' वागन ' नामक प्राचीन नगर बसता था । वहांपर जो तालाब है वह ' वागन-वाला ' नामसे भेह व खंडरात सहित है । इसीके पश्चिममें कुछ थोडी दूरपर अब ' वागनवाला ' नामक ग्राम बसता है । यहांसे एक जाती बीन्दके निकट जा बसा । वहां यह ' वागनवाला ' अपना प्राचीन नामकाही ग्राम बसाया है ॥

चतस्रःद्यौः-त्वष्टा-त्वषाम

" शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । " (ऋ. ७।३५।८)

अर्थात् इस चतस्र स्वर्गभूमिसे प्रजाएँ देशान्तरमें अपनी मातृभूमिके चिन्हको साथ लेकर फैली थी । क्योंकि इस मध्य साम्राज्यके आधीन सारी दिशाओंके राज्य थे । अतः यहांसे प्रजाएँ बाहर जा बसी अतः सिद्ध है कि आर्य बाहरसे नहीं आये प्रत्युत विजेता रूपमें बाहर गये ।

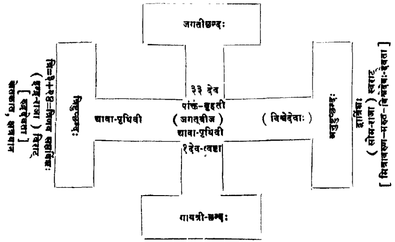
जगत्की मातृभूमिका पूजनीय चिन्ह । जो चारों दिशाओंके साम्राज्य सीमा व पथोंका विज्ञानिक यन्त्र है ।

१ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
२ स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ (ऋ. ५।५१।१४)
३ पथ्या स्वस्तिः पन्था अन्तरिक्षं तन्निवासात् ॥ (निरु. ११।४।११)
४ रेवति नक्षत्रं पूषा देवता । मीनाकार = ३२ तारागण ॥
५ रेवति सर्वा देवाः । देवताः ॥ (ऐ. २।१।१६) वाग् वा रेवति ॥ (शत. २।३।८।१।१२)

(विश्वे देवाः–देवता)

(वरुण–सम्राट्)

अष्टचत्वारिंशः



चतुर्विंशः

(अग्नि-राजा) राट्

[वसु–हेतिं–देवता]

(१) मित्र वरुण–पर्वो युक्त रेवति-इन्द्राणी (विश्वकर्मा) और अदिति देवी सुख स्वस्ति प्रदान करें ॥

(२) पथ्ये = पथोंवाली अन्तरिक्ष (पथनाम) स्वर्गमें जिसका निवास है। अविनाशी सुख प्राप्त करे ॥

(३) रेवति नक्षत्र (जो यहां ३२ तारापुञ्ज रहता है) उसका स्वामी पूषा (पशुदिक्पति) है। जो यहां अन्तरिक्ष स्वर्गका सम्राट् है ॥ इस नक्षत्रमें ३१ तारे होते हैं। मछली समान आकार (बहुसन्तति स्वभाव) जल समुद्रमें रहनेका स्थान यह है ॥

(४) रेवति = सारे देवोंवाली देवता है। जहां सारे देव हैं। वाग् = अदितिही रेवति है। जो देवोंकी जननी माता है ॥

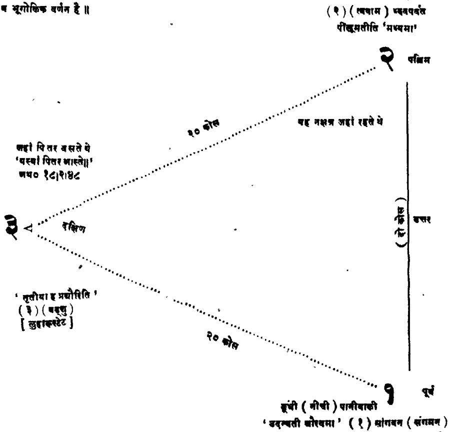
यहांसे त्वष्टापर्वतसे चारों दिशा स्थिर की गई थी। यहांसेही चारों दिशाओंपर राज्य किया जाता था। यहांसे पांचो दिशाओंको वशमें रखा जाता था। यही वशा नाम गौ = वाक्‌से कही है ॥ यह सार्वभौम साम्राज्यका सम्राट् स्थान था ॥ भारत नाम यहांसे स्थिर हुआ। इस मातृभूमिका यह स्वस्तिक चिन्ह ईसापूर्व १० सहस्र वर्ष सारे दुनिया व युरपमें फैल गया था।

त्रिविष्टप् ३ स्वर्गधाम ३ स्वर्गोंका देश । हरयाणा

इन तीनों स्थानोंके फोटो नहीं बन सके, प्रयत्न करता हूं । परन्तु कठिनाइयां आगे आती हैं इससे इनके स्थानोंका मोका तथा फासला ज्ञात हो जावेगा ॥

तिस्रो द्यावः, सवितुर्द्वा उपस्थाँ, एका यमस्य भुवने "विराषाट्"। (ऋ. १।३५।६)

३ द्यौ (स्वर्ग लोक) हैं । दो सविता (त्वष्टा)के समीप हैं । जो (उदम्वती और पीलुमती) वर्तमान (स्वधाम व संगमन) नगरोंके रूपमें । एक यमके भुवन विराषाट् नामके समीप प्रद्यौ जो वर्तमान (बड्यौ) लुहारू स्टेटमें (बढेड़ा)के पास (विराषाट्) इन तीनोंके मोके नीचेके चित्रोंद्वारा भेंट किये जा रहे हैं ॥ विराषाट्– इस समय 'बढेड़ा' लुहारूका थाना है । प्राचीन ऊँचे किलेपर बसा है ॥ यही यमकी छावनी थी । जहां वीर सैनिक रहते थे ॥ यह स्पष्टही ऐतिहासिक व भूगोलिक वर्णन है ॥



द्यावापृथिवी त्रिवृत्त कुछ समयके पश्चात् ३ देवोंके ३ भिन्न स्वर्गस्थान बनाये गये ॥ (१) अग्नि = का पृथिवी स्वर्ग । (२) वायु वा इन्द्रका मध्य स्वर्ग । सूर्य (यम)का प्रद्यौ (द्यौ) स्वर्ग जिसमें पितर रहते थे ॥ यह तीनों स्वर्ग स्थान इसी प्रकार ऊपरके 'अपभरणी' नक्षत्रके रूपपर बसे हैं ॥ तीनों खंडरात व प्राचीन थेह युक्त हैं । संगमन व स्वधामका ९ कोसका बीच है ॥ प्रद्यौ इन दोनों स्थानोंसे १० कोस दक्षिणमें है ॥ क्या आर्य यहां बाहरसे आये थे ?

भारतकी राष्ट्रीय भाषाकी समस्या

(लेखक– श्री० दयानंद गणेश धारेश्वर, बी. ए.)

भारतके राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवनको स्वाधीनता और समृद्धिशालितासे पूर्ण करनेके लिए जो भाँतिभाँतिके प्रयत्न इस समय समूचे देशमें प्रचलित हैं उनमें राष्ट्रीय भाषाके निर्माण प्रसार तथा विकासका आन्दोलन प्रमुख स्थान रखता है।

शताब्दियोंसे मध्ययुगीनता और पिछड़ेपनरूपी भीषण निशा–कालिमासे पूरी तरह घिरे हुए भारतीय जीवनके क्षितिजपर जिस समय आत्मीयता एवं राष्ट्रीय एकताकी जानकारीकी उषःकालीन रक्तिमाकी वाञ्छनीय झलट दिखाई देने लगी तब भारतके कई गण्यमान्य तथा देश-सेवाकी वेदीपर अपने समस्त जीवनको निछावर करनेसे तनिक भी न झिझकनेवाले वरेण्य नेताओंके दिलमें वैदेशिक एवं बिजातीय शासकोंकी भाषाकी निर्विवाद प्रभुत्व बहुत कुछ खटकने लगा। उनके नवोत्थित स्वाभिमान, देशप्रेम और राष्ट्रीय जाग्रतिके भावको एक जबरदस्त ठस पहुँची और वे इस दिशामें सचेष्ट हुए कि यदि राजनैतिक स्वाधीनता तथा आर्थिक स्वतंत्रताके साथ सांस्कृतिक प्रगति भी प्राप्त करनी हो, तो भारतीय जनमानसको शीघ्रही विदेशस्थ भाषाके सर्वंकष और संशयातीत प्रबल-तम प्रभुत्वकी जंजीरसे छुडानेकी कोशिश तो अवश्यमेव करनी चाहिए।

साहित्यसंभारसे सुसमृद्ध तथा प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचारोंके वहन करनेकी अत्यंत सराहनीय क्षमतासे युक्त आंग्लभाषाकी अप्रतिहत और असंदिग्ध प्रभुत्व भारतीय शिक्षाप्रणाली एवं समूचे राष्ट्रीय जीवनके सभी छोटे बडे विभागोंपर वर्षोंतक अक्षुण्णतया और अबाधरूपसे जारी रहा। यह कभी आँखो से ओझल न होने पाय की इससे यद्यपि प्रारंभमें पर्याप्त लाभ हुआ, तो भी कुछ समयके बीत जानेपर भारतीय विविध प्रान्तीय भाषाओंकी प्रगति तथा वृद्धि बहुत देरतक शोचनीय ढंगसे अवरुद्धसी रही। यह हानि कुछ कम उपेक्षणीय नहीं थी।

वर्तमान युगके पिछले लगभग अस्सी वर्षोंसे एक वैदेशिक, विजितीय सही, लेकिन साथही अत्यन्त वर्धिष्णु और प्रसरणशील सभ्यताके संपर्कमें आ जानेसे भारतीय जनसंघके क्या आर्थिक, क्या सामाजिक और क्या सांस्कृतिक तथा क्या धार्मिक जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अभूतपूर्व क्रान्ति उथलपुथल एवं अनूठे परिवर्तनरूपी सुहावने सुप्रभातका सूत्रपात हो चला, और यह बेशक बडी प्रसन्नताकी बात है कि इस अनोखी क्रान्तिका वेग दिनदूनी रातचौगुनी रफतारसे वर्षाकालीन नदीकी भाँति बढताही चला आ रहा है।

भारतमें राष्ट्रीय जाग्रतिकी जो चिरअभिलषित आविर्भाव आज यत्रतत्र दिखाई दे रहा है वह इसी प्रबल और जीवनके कोनेकोनेमें व्यापकतया घुमनेवाला क्रान्तिकारी अटूट अंग है, इसमें बिलकुल संशय नहीं।

वर्तमान शताब्दिमे जब भारतीय रंगमंचपर समस्त जीवनव्यापी खलबली और अन्दोलनका नूतन युग अवतीर्ण हुआ तब भारतीय नेताओंका ध्यान न केवल प्रान्तीय भाषाओंकोही समृद्ध करनेकी ओर आकृष्ट हुआ, पर विविधता और विभिन्नताओंके रहनेपर भी एकताकी अन्तर्निगूढ रूपमें स्थान देनेवाले महान् भारतीय राष्ट्रके महत्वपूर्ण विचारप्रवाहकी सम्यक् अभिव्यंजना करनेकी अत्यंत अभिलषणीय क्षमता रखनेवाली भाषाका स्वीकार करके वैदेशिक भाषाके असह्य दबावको दूर हटानेकी दुरूह समस्याके हल करनेकी तरफ भी प्रबलतया आकर्षित हुआ

संसारव्यापी और राष्ट्रीय नवजागरणके इस उत्साह-वर्धक कालमें यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ कि समूची भारतीय जनता एक ऐसी भाषाको राष्ट्रभाषाके उच्च तथा स्पृहणीय सिंहासनपर निस्सन्दिग्ध तौरपर बिठा दे, जिसकी जानकारी अखिल भारतकी अधिकांश जनता रखती हो और जिसे सीख लेनेमें अत्यधिक समय, परिश्रम तथा प्रयत्नकी भी जरूरत न जान पडे।

भारतकी कई समृद्ध प्रान्तीय भाषाओंमेंसे यह गौरवमय पद भारतके भालकी बिन्दी समझने योग्य हिन्दीको प्राप्त हुआ और आज विविध प्रान्तोंमें इस सीख लेनेकी सुतीव्र उत्सुकता एवं सराहनीय चेष्टा प्रचुर मात्रामें यत्रतत्र

अस्मित्वमें आ गयी है !

वैदेशिक भाषाके गुरुतम बोझको मिटाकर, भारतीय जनसाधारणके विचारों भावों तथा अनुभूतियोंको व्यक्त करनेकी क्षमता रखनेवाली हिन्दीकी उपादेयता यद्यपि संशयातीत ढंगपर निर्धारित हुई तो भी इसके स्वरूप एवं शब्दावलीके चयनके बारेमें अकारण और निरर्थक बहस चिरकालसे प्रचलित है !

आज जिस तरह समस्त पौर्वात्य राष्ट्रोंपर प्रसरणशील और प्रबल पाश्चात्य सभ्यता और शासनप्रणालिका आंतक छाया हुआ दीख पडता है ठीक उसी प्रकार, संपूर्ण भारतमें आधुनिक युगकी अरुणिमाकी झलक दिखाई देनेके पूर्व, मुस्लिम संस्कृति तथा शासन विधानका रोव दाब और दौरदौरा शताब्दियोंतक ज्योंका त्यों बना रहा ! लेकिन पिछली सदीमें वर्तमान युगकी जबरदस्त ठोकरें खानेका मौका जब भारतीय जनताके सम्मुख आया तो इस दकियानूसी जातिकी शताब्दियोंसे प्रचलित मोहनिद्राका भंग हुआ ! जीवनके हरएक विभागमें आगे बढनेका सुखद स्वप्न यह देखने लगी और अन्य आन्दोलनोंकी तरह राष्ट्रभाषा आन्दोलन भी पनपने लगा।

मुस्लिम संस्कृतिकी रँगतमें रँगे हुए उत्तर भारतके बहुतसे लोग भारतकी राष्ट्रभाषाको वैदेशिक अरबी और फारसीकी अप्रचलित, अपरिचित अतएव किन्हीं अंशोंमें आकर्षक प्रतीत होनेवाली पदावलीसे लदी देखना पसंद करते हैं और ऐसे लोगोंके दिलमें उर्दू भाषाके प्रति जो प्रमाद प्रेम है उससे भारतकी राष्ट्रभाषाका वास्तविक स्वरूप बहुत कुछ अनिश्चित और दुरूहसा बना गया है।

राष्ट्रभाषा आन्दोलनके आदिस्रोतपर दृष्टिपात कर लेनेसे तुरन्त जान पडता है कि वही समस्त भारतकी भारती या समूचे हिन्दकी हिन्दी बन सकती है, जो किसी भी वैदेशिक अथवा विजातीय भाषाके अनावश्यक एवं अनुचित दवाव या दासताकी शृंखलासे मुक्त रहकर अपनीही अंतर्गत शक्तिसे भारतीय मनोभावों, विचारों और आकांक्षाओंको व्यक्तरूप दे सके !

सोचनेकी बात यही है कि अगर संसारकी भाषा बननेके अदम्य साहससे पूर्ण और अतीव सुसमृद्ध श्रीमती इंग्लिश भाषाके अनुचित दवावसे छूटनेकी स्पृहणीय क्षमता भारतकी राष्ट्रभाषामें मौजूद हो तो, कोई कारण नहीं कि उत्तर भारतमें लाहोरसे लेकर दक्षिण हैद्राबादतक संकीर्ण क्षेत्रमें संचार करती हुई और मध्ययुगीन विचारधारामें डुबकियाँ लेनेवाने कुछ मध्यवित्त एवं उच्च श्रेणीके लोगोंमें इठलाती हुई उर्दूके अनावश्यक भारकी ठुकरानेकी क्षमताही इसमें न रहें।

राष्ट्रभाषाके प्रेमी कभी इस तथ्यको आँखोंसे ओझल होने न दें की, राष्ट्रके विभिन्न विभागोंमें आज जो कई समृद्ध भाषाएँ प्रचलित है उनमें समन्वय या सामञ्जस्य भली भाँति प्रस्थापित करनेका गुरुतम प्रश्नही, समस्त और विविधतापूर्ण भारतकी राष्ट्रभाषा पदको सुशोभित करनेवाली भाषाको अपनानेवालोंके सामने प्रस्तुत है! किसी एक खास श्रेणी या गुटमें प्रचलित भाषाकोही अत्यधिक तथा अनावश्यक महत्व देनेका कोई कारण नहीं रहता है !

दूसरी एक महत्वपूर्ण बात है कि अँग्रेजी-भाषाका प्रभुत्व वर्तमान दासताका दुष्परिणाम है तो फारसी और अरबीसे अपने शब्दभाण्डारकी श्रीवृद्धी करनेवाली उर्दूका माहे मध्ययुगीन पराधीनताका प्रतीक है ! परावलंबिता किसी भी कालमें या युगमें हो, वह सुतरां त्याज्य है इसमें क्या कभी विवाद या संशय हो सकता है !

आज भारतीय दृष्टिसे देखनेपर सबसे बडी आवश्यकता इतनीही है, उर्दू भाषा अपने शब्द संग्रही समृद्धि और वैचारिक दृष्टिबिन्दुकी अभिव्यंजनाके लिए विदेशकी ओर मुडना छोड दे और भारतीयतासे ओतप्रोत दूसरी प्रान्तीय प्रगतिशील भाषाओंमें अपना आसन तथा स्थान स्थिर बनानेके महान् कार्यमें सोत्साह जुट जाय। तभी भारतीय राष्ट्रभाषा निर्माणके क्षेत्रमें जो ज्वलन्त एवं बीहड समस्या उपस्थित हुई है वह जल्द हल की जा सकती है। नहीं तो एक किन्तु आधुनिक वैदेशिक भाषाको उच्चासनसे पदच्युत करके दूसरी भी विजातीय लेकिन मध्ययुगीन भाषाको स्थानापन्न करनेके सिवा और कुछ बननेवाला नहीं।

आज भारतकी प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषाके सामने एकही ज्वलन्त प्रश्न उठ खडा है-किस तरह मध्ययुगीनताका जामा पहनना छोडकर आधुनिक वैज्ञानिक युगके प्रांगणमें पदार्पण करके अज्ञात किन्तु आशापूर्ण भविष्यकी ओर अटल निर्धारसे अभिमान करने लगे ?

क्या 'ईश्वर' कोई है?

(ले०- श्री. वा० पु० हर्डीकर; राजापूर)

कुछ विशेष घटना अनुभव करते समय मनुष्यके मनमें उपर्युक्त प्रश्न कभी न कभी उत्पन्न होताही है। और इसी 'ब्रह्म-जिज्ञासा'में मानवकी मानवता अर्थात् 'नरदेह'की सफलता मानी जाती है। (परंपरा-प्राप्त भजन-पूजन, नमाज-प्रेअर आदि बातें अलग हैं) लेकिन सब लोग इस प्रश्नका न अधिक विचार करते हैं; न अनुभव कर सकते हैं। बहुतेरे लोग इस प्रकारकी अंतःप्रेरणाको अहंकार और अज्ञानके कारण दबा देकर अपने मामूली व्यवसायमें मशगूल हो जाते हैं। तो कोई कोरे तर्कसेही विचार करते करते थक जाते हैं। कुछ थोडेही मनुष्य श्रद्धासे इस प्रश्नका उत्तर खोजते रहते हैं। और उनमेंसे कुछ थोडेही इस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। गीता भी कहती है-

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥१॥
(अ० ७।१३)

ऐसे त्रिविध लोगोंकी विचार-प्रणालियोंका परिचय कर लेना बहुत उपयुक्त हो सकेगा। इसलिये यहाँ उनका थोडासा विवरण करता हूं।

१ नास्तिक- संसारकी सब चीजें हम देख सकते हैं। लेकिन न मालुम कि 'ईश्वर'को कभी किसीने देख लिया हो। बल्कि इस प्रश्नका विचार करना भी फिजूल माथापच्ची है! क्योंकि ईश्वरके विचारसे न हमारा कुछ बनता; या न कुछ बिगड सकता। हमारे सामने एकही प्रश्न है; वह है 'रोटीका सवाल!' और उस समस्यामें 'ईश्वर' तो सचमुच बिलकुल बेकार चीज है! देखिए; 'जाडेके बाद गर्मी तथा उसके उपरांत बरसात' यह सिलसिला सदियोंसे जारी है। उनसे लाभ उठाकर हमारे किसान भाई तरह तरहके अनाज पैदा करते हैं। और हम लोग खा-पीकर अपना जीवन बिताते हैं। चोर-डाकुओंसे 'पुलीस' और गव्हर्मेंट हमारी रक्षा करती है। तो समझमें नहीं आता कि, इस मामलेमें 'ईश्वर' जैसे अजीब वस्तुको गुंजाइश कहाँ है? कोई भोले-भाले कहते हैं, कि-

मूकं करोति वाचालम्।
पंगुं लंघयते गिरीम्॥
यत्कृपा तमहं वंदे।
परमानंद-माधवम्॥१॥

(अर्थात् ईश्वरकी कृपासे सब कुछ होता है। गूँगा आदमी 'वक्ता' बन सकता है; या लूला-अपाहिज भी पहाडकी चोटीपर जा सकता है।)

ओह! कितनी वंचना और मूर्खता है, इस थोथी कल्पनामें! यह चमत्कार अबतक शायदही किसीने देखा हो! छोड दीजिए; ऐसे पुराने गपोडोंको और मजहबी खयालोंको। और आइए हमारे बडे बडे शहरोंमें। देखो हमारे ग्रामोफोन और रेडिओ! अगर जड वस्तुको 'वाचाल' बनानेकी अजीब करामत किसीने की हो, तो हमारे आधुनिक विज्ञानने; ईश्वरने नहीं। 'सिमला' जैसे पहाडी शहरमें अब रेलसे पंगु-अपाहिज भी आरामसे पहुँच सकता है, यह क्या ईश्वरकी कृपा है? इस प्रत्यक्ष वस्तुओंको छोड 'ईश्वर' जैसे मृगजलके पीछे दौडना, या पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरकके झंझटमें फिजूल गोते खाना 'पागलपन' के सिवा और क्या हो सकता है?

२ तार्किक- कोई भी कार्य बिना कर्ताके होही नहीं सकता। तो संभव है कि 'सृष्टि' का भी कोई कर्ता तथा नियामक जरूर होगा; क्योंकि सूर्यके उदयास्त तथा ऋतु आदि नियमित रूपसे होते, नजर आते हैं। लेकिन यदि इसी कसौटीपर 'ईश्वर' को भी कसकर देखा जाय- अर्थात् यह नियामक भी एक कार्य समझा जाय-तो दूसरा सवाल खडा होगा कि, इस 'ईश्वर' की निर्मिति किसने की होगी? इस सवालसे कोई लाजवाब होकर

ईश्वर को स्वयंभू तथा 'अज' भी मान लेगा। तो सृष्टिके 'पंचमहाभूतोंहीको' स्वयंभू (और स्वतंत्र) क्यों न माना जाय? खैर।

उत्पत्तिकी यह जटिल समस्या छोडकर हम आगे बढेंगे। हरएक वस्तुका कुछ न कुछ रंग-रूप-गुण आदि होताही है। जिन 'पंचमहातत्त्वों' से संसारकी सारी चीजें पैदा हुई हैं, उनका अब क्रमसे विचार करेंगे। पहले पहल 'भूमि' को लीजिए। उसे 'रंग-रूप-स्वाद' आदि सब कुछ होता है। 'पानी' अपने लिए खास 'आकृति' नहीं रखता; रंगके विषयमें भी 'जिसमें मिलावे वैसा' कहनाही पर्याप्त होता है। 'तेज' और 'वायु' में इन दोनों बातोंका अभावही होता है। 'पानी' आकृति छोड 'आकारमान' तो निश्चित रूपसे रखता है। लेकिन 'वायु' को वह भी मंजूर नहीं। आखिरी तत्त्व है (आकाश)। उसमें तो इन सभी गुणोंका अभाव दिखाई देता है। 'तेज' तथा 'वायु' का ज्ञान स्पर्शसे तो हो सकता है; लेकिन 'आकाश' क्या है? निरा 'शून्य!' इस प्रकार यदि यह अभावकी परंपरा अधिक दूर बढा दी जाय, तो 'ईश्वर' का अस्तित्व कैसे सिद्ध होगा?

तो फिर 'ईश्वर' का अस्तित्व सिद्ध होनेके लिए कोई दूसरी दलील ढूँढना चाहिए। अब ईश्वरके गुणोंका विचार करेंगे। कहते हैं, 'ईश्वर' सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा दयालु भी है। इसका सबूत? यह कि उसकी कृपासे हरसाल बरसात होती है, तरह तरहके पुष्पफलों तथा अनाजोंसे वसुंधरा संपन्न होती है; और उससे अनंत जीवोंका पोषण होता है। लेकिन समझमें नहीं आता कि, ऐसे रामराज्यमें 'वैषम्य-नैर्घृण्य' क्यों चलता रहता है? बेचारी गोमाता कसाईखानेमें क्यों काटी जाती है? क्या उसकी चीखपुकार 'ईश्वर' के कानोंतक नहीं पहुँचती? तो वह सर्वज्ञ कैसे? क्या सर्वज्ञ होते हुए भी संसारके करोडों दीनदुखियोंकी रक्षाके लिए उसके पास पर्याप्त बलही नहीं है? इसपर कोई कहेगा कि, 'गोमाताकी हत्या इसके पूर्वजन्मके किसी घोर पापकर्मका फल होगा।' तो वह कल्पित पापकर्म करते समयमेंही उसको ईश्वरने क्यों न रोक रखा? जिससे अगले जन्ममें बेचारीपर कत्ल-की नौबत नहीं आती। तो क्या, 'ईश्वर' मानो दूर रहकर दुनियाका तमाशा देखनेवाला एक कठोर या दुर्बल व्यक्ति हैं? अथवा सिर्फ कर्मफल बाँट देनेवाला मामूली आदमी या 'डाकिया' है? ऐसे व्यक्तिको 'ईश' अर्थात् स्वामी और 'वर' अर्थात् श्रेष्ठ कौन कहेगा? इस प्रकार जिसके गुणोंके संबंधमें बहुत संदेह है, और रूपका पता भी नहीं मिलता, ऐसे किसी खयाली व्यक्तिका अस्तित्व हम क्यों मान लें?

३ भावक (श्रद्धालु):- कहाँ सर्व शक्तिमान् 'ईश्वर' और कहाँ दुर्बल तथा क्षुद्र मानव! तो सिर्फ तर्कके सहारे उस 'अनंत' के विषयमें हम किस हदतक ज्ञान प्राप्त करेंगे? हमारी आयु तो कितनी? ज्यादासे ज्यादा सौ वर्षतक। उसमेंसे आधी जाती है नींद और सुस्तीमें। जो शेष रही, उसमेंसे कुछ तो गई बचपनकी 'अबोध' अवस्थामें; बहुतसी खोई गयी जवानीकी 'मस्तीमें'! और बची-खुची बरबाद हुई बुढापेकी 'कमजोरी और व्याधियोंमें ऐसी अवस्थामें 'ईश्वरकी' खोज कैसी करें? किसी साधारण भाषा अथवा शास्त्रके अध्ययनके लिए 'बारह वर्ष' लगते हैं, तो 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्' जैसी विद्याके लिये कितनी आयु प्राप्त होनी और खर्च करनी चाहिए? और भी एक बात है कि यह महान् विद्या अथवा 'ब्रह्मज्ञान' सिर्फ पुस्तकें रटनेसे प्राप्त हो भी नहीं सकता। महात्मा कबीरदास ठीक ही कहते हैं:-

'लिखा-लिखीकी है नहीं, देखा-देखीकी बात।
दुलहा-दुलहिन मिल गई, फीकी पडे बरात'॥१॥

(सारांश, ईश्वर और उसका ज्ञान अनुभवका विषय है, कोरी चर्चा का नहीं।)

यदि हम अहंकार छोडकर अपनी अंतःप्रेरणाकी ओर जरा ध्यान दें, तो अपनी आत्माका परमात्मा ईश्वरसे कुछ न कुछ परिचय जरूर होता जायगा। व्यवहारमें हम देखते हैं, जब किसी मुकदमेमें न्यायाधीश संदेहमें पड जाता है, या साधार और ठीक निर्णय देनेमें असमर्थसा होता है, तब बाहरी अडंबर सब छोडकर सीधा अपनी आत्माकी शरण लेता है; और उसकी आज्ञानुसार 'निजी राय' के नामपर दोचार पंक्तियाँ लिखकर फैसला जाहीर कर देता है। वह 'निजीराय' याने 'अंतःप्रेरणा' सरकारी कानून भी कबूल करता है! इस उदाहरणसे हम सबक सीख सकते हैं कि मानवी बुद्धि जब कुंठित होती है, तब उसके परे एक

दिव्य शक्ति या उसका अंश जो—हमारे हृदयमें वास करता है— हमें मार्गदर्शन करता है। अगर उसका ठीक ठीक परिचय हम कर लेंगे, तो धीरे धीरे उसके द्वारा 'ईश्वर' सेभी हम परिचयही क्या ?— एकरूपता प्राप्त कर लेंगे। एक दिन हम खुदही ईश्वर बन जाएंगे।

लेकिन यह कार्य विना श्रद्धाके नहीं हो सकेगा। स्वयं भगवान् 'गीता'में कहते हैं कि 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' तो हम संदेहके भंवरेमें क्यों गोते खाएँ? 'संशय-पिशाचसे' श्रद्धालु भक्तोंको बचानेके लिए महाराष्ट्रीय संत 'तुकाराम' कहते हैं—

ऐका ऐका भाविक जन। कोण कोण व्हाल ते॥
तार्किकांचा टाका संग। पांडुरंग स्मरा हो॥
नका शोधूं मतांतरें। तुम्हगे खरें बुडाल॥
कलीमध्यें दास तुका। जातो लोकां सांगत॥१॥

(सारांश, हे श्रद्धालु भक्तो, तार्किकोंकी संगति छोड ईश्वरका भजन करते जाओ। तर्क-वितर्क करते करते तुम थक जाओगे। लेकिन सत्यका पता इस प्रकार कभी न लगेगा। परिणाम यह होगा कि तुम्हारा मानवी जन्म विफल हो जायगा। इसलिये श्रद्धासे 'ईश्वर'का स्मरण करो।)

हिन्दीमें विदेशी शब्द?

आज जिसे हम हिन्दी या खडी बोली कहते हैं वह इस देशकी प्राकृत या अपभ्रंश भाषाओंकी उत्तराधिकारिणी समझी जाती है। उसका मूल संस्कृतमें माना जाता है। लेकिन पिछले सात आठ सौ वर्षोंमें बाहरकी संस्कृतियोंसे जो हमारा सम्पर्क हुआ उससे इस देशकी भाषाओंमें सैकडों हजारों शब्द विदेशी भाषाओंके आगये हैं। हरएक जीवित भाषामें यह होता है और मनुष्य जातिकी एकताके लिहाजसे यह होना भी चाहिये।

आज राष्ट्रभाषाकी समस्या सामने है। इस देशकी राष्ट्रभाषा हिन्दी सिद्ध हो चुकी है। किन्तु उसके रूपके बारेमें झगडा खडा हो गया है। एक दल उसे अरबी फारसीके नये शब्दोंसे लादना चाहता है और दूसरा दल उन भाषाओंके पचे हुए शब्दोंको भी निकालनेकी फिराकमें है और इनके स्थानमें अप्रचलित संस्कृत शब्द भरना चाहता है। पर यह सब अनुचित है और अशक्य भी है।

हिन्दीमें अरबी फारसीके जो शब्द पच चुके हैं उनकी संख्या हजारोंपर जायगी और वे इतने घुलमिल गये हैं कि अधिकांश शब्द अपढसे अपढ आदमी भी समझ सकता है। बल्कि कुछ शब्द तो ऐसे भी मिलेंगे जिनके बदलेमें हमें भारतीय भाषाका दूसरा शब्द ढूढना कठिन होगा।

यद्यपि आज अंग्रेजी आदिके शब्द भी हिन्दी भाषामें आगये हैं पर रेल मोटर साइकिल स्टेशन आदि शब्दोंके समान कितने शब्द हिन्दीमें पच गये हैं इसका निर्णय करना कठिन है। गुलामीके कारण अंग्रेजी भाषामें इस देशके युवकको जो शिक्षण लेना पडता है उसके कारण सैकडों अनावश्यक और अपच्य शब्द हिन्दीपर लाद गये हैं पर परिस्थिति बदलतेही उनका बोझ उतर जायगा। इसलिये आज इसका हिसाब लगाना कठिन है कि अंग्रेजीके कौनसे शब्द हिन्दीमें पच गये हैं। पर अरबी फारसीके शब्दोंके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता है। आज उन्हें राजबल प्राप्त नहीं है, आज वे सिर्फ इसीलिये आसन जमाये बैठे हैं कि जनताने उन्हें अपना लिया है। आज इनका बहिष्कार उचित और सम्भव नहीं है। शब्दोंको गिनाना तो कठिन है फिर भी यहाँ बहुतसे शब्द दिये जाते हैं जिससे पाठक समझ सकें कि आजकी हिन्दी किन किनके मेलसे बनी है।

हिंदीमें अरबी शब्द

अक्ल, अखबार, अत्तर अदद अदना अदब अदायगी अदालत अदावत अन्करीब, अमन अमल अमानत अमीर अर्जी अलहदा अलमस्त असबाब असलियत अस्तबल आखिर आदमी आफत आह इजलास इजहार इजाजत इब इन्सान इनाम इनकार इन्किलाब इन्तजार इन्साफ इमारत इलाका इशारा इखोफ ईमान उम्दा एहसान एतराज ऐब ऐलान औजार औरत औलाद औसत. कतार कत्ल कदम कफर कबन कबूल कब्ज कब्जा कमाल कर्जा करामात करार करीब कलई कलम कवायद कस्बा कसम कसर कसरत कसाई कुसूर कानून काफी काबिल कायदा कायम कायल कालीन किताब किराया किस्त किस्म किस्मत किस्सा कीमत कुरबान कुरसी कुलाबा कै कैद कैफियत कौल कौम खंजर खत खस्म खतरा खंदक खबर खयाल खराब खलास खवास खसम खास खारिज खाली खिताब खिदमत खिलाफ खुफिया खुलासा खैरात खौफ गजब गदर गनीमत गफलत गमी गरज गरीब गरूर गलत गल्ला गश गाफिल गुलाम गुस्सा गैर गोता। जनाजा जब्र जमा जमात जमनात जमाना जरा जरूर जल्दी जलसा जल्लाद जवाब जहाज जामिन जासूस जालिम जाहिर जिक्र जिरह जिला जिल्द जुर्म जुलाब जुलूस जुल्म जौहरी ज्यादा। तकरार तकलीफ तकाजा तकावी तर्जुमा तजवीज तफावत तबला तबादला तबियत तमाम तमाशा तम्बूरा

तरकीब तरक्की तरफ तरह तरीका तर्ज तबेला तसल्ली तसवीर तहलका ताकत ताक ताकीद ताज ताना ताबे तारीख तारीफ तिजारत तूतिया तूफान तैनात तौहीन दगा दफन दबदबा दर्जा दलाल दलील दवा दवात दहेज दाखिल दाखिला दावत दावा दिक्कत दिमाग दीवान दुनिया दौलत नक्द नकल नकाब नक्काल नक्काशी नक्शा नजर नजीर नतीजा नफा नब्ज नवाब नसीब नसीहत नस्ल नासूर निहायत नीयत नुकता नुकसान नुस्खा।

फकीर फजीहत फजूल फतह फर्क फर्श फरार फसल फसाद फाका फासला फिक्र फिरका फिराक फिलहाल फुरसत फैसला फौज फौरन बकाय बगावत बगैर बजाज बदला बन्दूक बयान बयाना बराबर बहस बाकी बाग बाद बालिग बिलकुल बिसाती बुखार बुर्ज मंजिल मंजूर मकान मक्कार मखमल मगज मगरूर मजबूत मजबूर मजाक मजाल मतलब मदद मदारी मंशा मनसूबा मनहूस मनाही मरम्मत मलहम मरीज मल्लाह मवाद मवेशी मशहूर मशाल मसनद मसौदा मसखरा महकमा महराब महल मुहल्ला महसूल मातम मातहत माफ माफिक मामला मामूली मारफत माल मालिक मालूम मिजाज मिल्लत मिल्कियत मिसरी मीयाद मुअत्तल मुकदमा मुकाबिला मुकाम मुखबीर मुख्तार मुजरा मुजरिम मुद्दत मुनीम मुंशी मुफ्त मुबारिक मुमकिन मुरब्बा मुलम्मा मुलायम मुल्क मुश्किल मुसाहिब मुस्तैद मुहताज मुहब्बत मुहावरा मेज मेवा मैदा मुहलत मौका मौज मौजूद मौत मौरूसी मौसम। रईस

रकम रतल रद्दी रिवाज रस्म राजी राय रिआया रिश्वत रुक्का रोब रौनक लकवा लाचार लायक लिफाफा लियाकत लिहाज लिहाफ लेकिन वकालत वजन वजीर वरदी वसीयत वसूल वहम वाजिबी वादा वारिस वास्ता विदा विलायत शऊर शुक्र शरबत शराब शरारत शर्त शहद शहीद शान शामिल, शिकायत शुरु शैतान शोक सतह सदमा सन सनद सन्दूक सफर सफाई सफाया सबक सबब सबूत सब्र सराफ सराय सलाम सलाह सलूक सवाल सही साफ साफा साबित साबुन साहिब सिक्का सिलसिला सिवा सुबह सुबूत सुराही सुलह सूरत सैर सौदा हकीम हजामत हद हमल हमला हरारत हर्ज हलुआ हवा हाकिम हाजिर हाल हालत हिकमत हिमायत हिम्मत हिसाब हिस्सा हुक्का हुक्म हुजूर हुलिया हैजा हैरान हैसियत हौसला......

इत्यादि सैकड़ों या हजारों शब्द अरबी भाषाके हिन्दीमें पचगये हैं।

हिन्दीमें फारसी शब्द

अंगूर अगर अन्दर अनार अन्दाज अफसर अफसोस अशरफी आतिशबाजी आबकारी आबरू आबहवा आबाद आमद आराम आवाज आवारा आस्मान उस्ताद। कफ कबूतर कम कमजोर कमबख्त कमर कमान कमीना करिश्मा कशीदा कागज कारखाना कारीगर कार्रवाई काश्तकार किनार किशमिश किश्ती कुश्ती कूच कोशिश खजानजी खरबूजा खरगोश खराद खरीददार खर्च खस खानगी खानदान खानापूरी खानसामां खानातलाशी खुर्दबीन खुश खुशखुदार खुशामद खून खूबसूरत खूबी खुराक खैर गज गन्दा गप गरदन गर्म गर्द गवाह गलीचा गिरफ्तार गिर्दगिर्द गुंजाइश गुजर गुनहगार गुमान गुमाश्ता गुलजार गुलदस्ता गुलाब गुस्ताखी। चंगुल चकमक चन्दा चपरासी चरखा चर्बी चश्मा चाकर चाकू चादर चापलूस चाबुक चाय चालाक चाशनी चिराग चिलम चीज चुगलखोर चुस्त चेचक चेहरा चौगान जंग जंजीर जख्म जगह जनाना जमींदार जमीन जहर जागीर जाजम जादू जान जानवर जायदाद जुदा जुर्माना जोर जोश। तंगी तकिया तनख्वाह तपेदिक तबाह तब्दीली तमाचा तरबूज तरस तराजू तर्कश तश्तरी तहखाना ताजा तीर तेज तेजाब दंग दंगा दंगल दफ्तर दम दमा दरबार दरवाजा दर्जी दर्द दस्त दस्तकारी दस्तखत दस्ता दस्तावेज दस्तूर दान दामाद दारू दारमदार दारोगा दालान दिल दिलेर दीमक दीवार दुकान दुशाला दुश्मन दूरबीन दूरी देर देहात दोगला दुबारा दोस्त नक्कारखाना नजदीक नगीना नजराना नदारद नफरत नमक नमूना नरम नश्तर नहर नाखून नाजुक नादान नादार नाबदान नामर्द नामवरी नामी नारंगी नालिश नाशपाती निगरानी निशान निशाना निहाल नुकीला नुमाइश नेक नोक नौकर नौबत

पंजा पत्तीकी परचा परदा परवानगी परेशान पलक पसंद पहलवान पाजामा पाजी पाबंदी पाया पासंग पिस्ता पुरजा पुल पुश्तैनी पेचदार पेशकार पेशगी पेशा पेशाब पेशी पेश्तर पैखाना पैदावार पैरवी पोदीना पोशाक प्याज प्यादा प्याला फरियाद फरिश्ता फानूस फीता फौलाद बखिया बख्तर बगल बगीचा बद बदन बदबू बदमाश बन्दर बन्दी बन्दोबस्त बियाबान बरखास्त बरदाश्त बरबाद बर्फ बल्कि बस बहादुर बहाना बहार बाजार बाजी बाजू बादशाह बादाम बाबा बारदाना बारिश बारीक बारूद बालिश्त बाशिन्दा बिरादरी बिस्तर बीमार बीमा बुजदिल बुजुर्ग बुनियाद बुरादा बेकार बेगार बेचारा बेचैन बेजा बेशक बेशी बोरिया मजदूर मजा मरदानगी मस्त मादा मालिश माह मियान मिस्सी मुर्गी मुरदा मेहमान मेहरबान मैदा मैदान मोम मोरचा। याद यार रंगरेज रंगीन रंज रकाबी रग रन्दा रफ्तार रवानगी रसद रसीद रास्ता राह रिश्ता रिहा रूमाल रेशम रेगिस्तान रेखा रोगन रोज रोजगार रोजनामचा रोजमर्रा रोजी रोशनी रोशनाई लंगर लगाम लश्कर लुंगी वीरान शर्म शादी शाबास शाम शामियाना शायद शाल शाह शिकार शीशा शीशी शेर संगमरमर संगीन सुपुर्द सफेद सब्जी सरकार सरदार सरासर सोश सरोकार सर्दी सवार सादगी सामान साल सितार सितारा सिपाही सिफारिश सीखचा सुपुर्द सीना सुरमा सुस्त सुजाक सूद सूराख सौदागार हंगाम हजार हफ्ता हमेशा हरकारा हुनर होश होशियार। इत्यादि।

हिंदीमें अरबी फारसीमिश्रित शब्द

आमफहम इकरारनामा खातिरदारी जमादार तहसीलदार दीफसली नाइक फीसदी फौजदारी बेईमान मालगुजारी बफादार शफाखाना सरताज सरहद हरजाना। इत्यादि।

हिन्दीमें तुर्की शब्द

कलगी, काबू, कुतका कुली कैंची चमचा चिक तमंचा तमाम तलाश तोप बबर्ची बेगम लाश सौगात।

हिन्दीमें पुर्तगाली शब्द

नीलाम, मस्तूल

किस्ट बहुत लम्बी होगई थी इसलिये बहुतसे शब्द छोड देने पडे। इसके सिवाय खोजनेसे और भी शब्द मिल जावेंगे। आज जब कि हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानलिया गया है और उसमें विदेशी शब्द हजारोंकी संख्यामें पच गये हैं तब यह असम्भव है कि उसे बिलकुल शुद्ध संस्कृतमय बनाया जाय। बल्कि जरूरत इस बातकी है कि उसमें आवश्यकतानुसार कनडी तामिल तेलगु मलयानिल मराठी गुजराती बंगाली उडिया असमिया सिन्धी आदिके कुछ कुछ शब्द भी शामिल किये जायँ। अंग्रेजीके शब्द तो जरूरतसे ज्यादा आगये हैं जो पच गये हैं वे रहें बाकी शब्द निकाल दिये जायँ और जरूरतके मुताबिक रूसी फ्रेंच जर्मन चीनी जपानी भाषाओंसे सरल और पचने लायक शब्द लेलिये जायँ। इस प्रकार हिन्दीका शब्दभण्डार विशालसे विशाल हो। और ऐसा हो जिससे दूसरोंको उसके साथ आत्मीयता स्थापित करनेमें सुभीता हो। ऐसी हिन्दीको कोई हिन्दुस्तानी कहना चाहे तो भी कोई हानि नहीं है। भाषा और लिपिके बारेमें विशेष अगले किसी अंकमें लिखा जायगा।

सत्यभक्त

(संगमसे उद्धृत)

(संपादकीय)

ऊपरका लेख 'हिन्दीमें विदेशी शब्द' जैसाका वैसा यहां मुद्रित किया है। क्या ये शब्द 'विदेशी' और 'विभाषा' के करके हिंदी भाषामें इस समय प्रयुक्त हो रहे हैं, या ये हिन्दीकेही समझे जाकर प्रयुक्त किये जा रहे हैं। किसी भी भाषाके शब्द हों वे जब किसी दूसरी भाषामें पच जाते हैं और उनके लिये उसी भाषाके व्याकरणके नियम लगते हैं, तब वे उसी भाषाके शब्द समझे जाते हैं।

वैसे तो संस्कृतके शब्द जगत्की सभी भाषाओंमें प्रयुक्त होते हैं अथवा तद्भव या अपभ्रष्ट रूपमें प्रयुक्त होते हैं। सूर्य शब्दका 'सूरज' रूप 'हिन्दी, हिंदुस्थानी, उर्दू, पर्शियन' भाषाओंमें है। पर पर्शियन लोग उसको पर्शियन करके बर्तते हैं। 'अर्वा' इस वैदिक शब्दकाही रूप 'अर्व, अबे, अरब' है, पर अरब शब्द यहांका समझा जाता है, 'आह्ल' शब्द संस्कृतका है, पर वह रूसी भाषामें रूसका होकर प्रयुक्त हो रहा है। जैसा 'बीरबीलाह्ल' इसमें आह्ल शब्द। इस तरह सभी भाषाओंमें

' मातृ, पितृ, भ्रातृ ' आदि शब्दोंके तथा ' गौ ' शब्दके रूप संस्कृतकेही हैं, पर यहां ' ये विदेशी शब्द ' ऐसा कोई नहीं समझता। पर सत्यभक्तजीने हिंदीमें विदेशी शब्द ऐसा शीर्षक देकर हिंदीमेंही विदेशी और विभाषाके शब्द प्रयुक्त होते हैं ऐसा भ्रम उत्पन्न किया है। यह शीर्षक पाठकोंमें भ्रम उत्पन्न करेगा।

यह बात सत्य है कि यदि पूर्वोक्त भाषाओंके शब्द दसों, बीसियों, पचासों या सौकी संख्यामें हिंदीमें प्रयुक्त हो रहे हैं, तो संस्कृत भाषाके शब्द सहस्रोंकी संख्यामें प्रयुक्त हो रहे हैं। ' हिंदी ' शब्दका प्रयोग देहलीके बादशाहाओंके समय या उससे भी पूर्वकालसे होता आ रहा है। ' हिन्दुस्थानी ' शब्दका प्रयोग १५० वर्षोंसे प्राचीन नहीं होगा।

अंग्रेजोंने हिंदी उर्दूसे कुछ शब्द चुनकर जो नयी भाषा जित लोगोंके लिये बनानेका यत्न किया वही 'हिंदुस्थानी' है। यह भाषा विदेशी राज्यकर्ताओंने इसलिये बनायी कि, हिंदवासियोंके लिये जो कभी अभिमानका स्थान नहीं हो सकेगी। यदि उर्दू भाषा राष्ट्रभाषा बनाई गयी, तो उसके साथ देहलीके मोगल साम्राज्यका अभिमान जाग्रत होगा। यदि हिंदीभाषा राष्ट्रभाषा बनायी, तो रामचरितमानस जैसे ग्रंथ उसमें होनेसे वह बहुजनसमाजके लिये दिल हिला देनेवाली भाषा होगी। इसलिये 'हिंदुस्थानी' भाषा–मिश्रभाषा-ऐसी बनायी गयी, कि जिसमें साहित्यकी दृष्टिसे या इतिहास तथा संस्कृति-सभ्यताकी दृष्टिसे किसी हिंदवासीको इसका अभिमान कभी उत्पन्नही न हो सके।

यह राज्यकर्ताओं–साम्राज्यवादियोंकी चतुराई है। भाषाही अभिमान जाग्रत करती है, क्योंकि उसमें साहित्य होता है और वह साहित्य भूतकालसे जनताका संबंध सुरक्षित करता है। इसीलिये चतुर राज्यकर्ताओंने यह हिंदुस्थानी नामकी ऐसी मिश्रभाषा बनायी कि जो कभी किसीका अभिमानका स्थानही न हो सके ! !

गत सौ सवासौ वर्षोंमें यह भाषा अंग्रेजोंके खानसामों, साईसोंकीही भाषा रही है। किसी भी अच्छे साहित्यिकने इसमें किसी अच्छे ग्रंथकी निर्मिति नहीं की, यही प्रमाण है कि, भारतीय जनताने इसपर कभी प्रेम नहीं किया।

उपरके सन्माननीय लेखकने अरेबिक, पर्शियन, तुर्की शब्द गिनाये हैं। उनका इरादाही विदेशी शब्द गिनानेका था। वैसे संस्कृतके शब्द क्यों गिनाये नहीं ? क्या हिंदीमें संस्कृत शब्दही नहीं हैं ? पूज्य लेखकने अरेबिक पर्शियन शब्द है ऐसा कहा, संस्कृत शब्दोंका नामतक नहीं लिया। इस लेखसे ऐसा दीखता है कि हिंदी या हिंदुस्थानीमें अरेबिक, पर्शियन, तुर्कीही शब्द हैं, और संस्कृत शब्द हैंही नहीं।

वास्तवमें उन्होंने हिंदीमें कुल शब्द कितने हैं, उनके अनुपातसे संस्कृत, पर्शियन, अरेबिक, तुर्की, पुर्तुगाली, अंग्रेजी शब्द फीसदी किस प्रमाणमें है यह स्पष्ट रूपसे बताना चाहिये था। पर इस लेखसे ऐसा भ्रम उत्पन्न किया है कि हिंदीमें संस्कृत शब्द तो हैंहि नहीं, केवल अरबी, फार्सी, तुर्की, पुर्तुगाली आदिही शब्द हैं।

यदि हमारा आदर्श ' सत्य ' है, तो ऐसा करना उचित नही है। हम यह कहते हैं कि, हिंदीमें संस्कृत शब्द फीसदी पचानवे हैं और अरबी, पर्शियन, तुर्की, अंग्रेजी, पुर्तुगाली मिलकर फीसदी पांचही हैं। यह बात हम हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओंके आज छपकर प्रकाशित हुए कोशोंसे सिद्ध कर सकते हैं। हमारा आह्वान है कि प्रत्यक्ष कोशोंके प्रमाणसे यह हमारा लिखा प्रमाण असिद्ध है ऐसा कोई दिखावे।

संस्कृत और संस्कृतोद्भव शब्द संस्कृतही हैं ऐसा हम मानते हैं और जिनका संस्कृतसे कोई संबंध नहीं वेही शब्द अन्य भाषाके समझे जायगे। इस नियमानुसार हमने उत्तर भारतीय भाषाओंके छपे कोशोंसे उक्त प्रमाण निश्चित किया है। जो इसे असिद्ध करना चाहे वह अपने प्रमाण सामने लाकर रखे।

विशेष बात यह है कि, जो अरबी, फार्सी, तुर्की आदि भाषाओंसे आये, जो हिंदीमें पच चुके हैं, उनके उच्चारण प्रयोग और अर्थ हिंदीके हो चुके हैं, अतः वे शब्द अब उन भाषाओंके नहीं रहे। वे हिंदीकेही शब्द हैं। वे हिंदीके शब्द होनेके कारणही इस समय प्रयुक्त हो रहे हैं। अरबी, पर्शियन आदिकोंके वे शब्द हैं इस भावसे उनका प्रयोग नहीं हो रहा है।

इसका एक उदाहरण लीजिये। पर्शियन, उर्दू और हिंदुस्थानी तथा हिंदीमें ' सूरज ' शब्द प्रयुक्त है।

निःसंदेह यह ' सूर्य 'का अपभ्रंश है। फिर वह किसी भी भाषामें प्रयुक्त होता रहे। पर पार्सी या ईरानके लोग उसे अपना शब्द कहेंगे वैसेही उर्दू हिंदुस्थानी और हिंदी भी उसको अपनाही शब्द कहेंगे, पर वह है वास्तवमें संस्कृतका या संस्कृतसे उत्पन्न शब्द। ईराणियोंके लिये वह है विदेशी और विभाषाका शब्द। पर उनसे पूछिये तो सही, वे कहेंगे कि वह पर्शियन भाषाका शब्द है।

इसी तरह अरबी, पर्शियन या तुर्की वा अंग्रेजी किसी भाषाका शब्द हो वह हिंदीमें पच जानेके कारण वह हिंदीकाही हो चुका है। इसलिये अब उसपर मूल भाषाका अधिकार नहीं रहा, उसको हिंदीका व्याकरण लगता है उसके रूप हिंदीके जैसे होते हैं अतः वह मूल भाषाका नहीं है।

अतः यह हेतु पकडकर ऐसा कोई नहीं कह सकेगा कि, जिस कारण हिंदीभाषामें सौ शब्द अरेबिक आ चुके हैं, इसलिये अन्य मनमाने अरेबिक शब्द लेने चाहियें, तो वैसा कहना अयोग्य होगा। पूर्वोक्त लेखमें ऐसा भाव व्यक्त हो रहा है वह अशुद्ध भाव है।

फिर नये शब्द हिंदीभाषामें लेनेकी आवश्यकता उत्पन्न होनेपर किस भाषाके शब्द लेना योग्य है, यही महत्वका प्रश्न है। इसका उत्तर यही है कि सब देशोंके विद्वान् कैसा करते हैं वैसाही व्यवहार हमें करना चाहिये।

इंग्लीश, जर्मन, फ्रेंच, रशियन भाषाओंमें उनके निकटवर्ती भाषासेही नये शब्द भरती करते हैं। अरबी, फार्सी, तुर्की भाषामें भी उनकी निकटवर्ती भाषासेही शब्द लिये जाते हैं। वैसेही हिंदीमें लिये जाने चाहिये। हिंदी, हिंदुस्थानी तथा उर्दू ये भाषाएँ भारतवर्षमें उत्पन्न हुई भाषाएँ हैं, इसलिये भारतवर्षकी किसी प्राचीन भाषासे अथवा आधुनिक भाषासे नये शब्द लेना योग्य है और यही और ऐसाही सब देशोंके विद्वान् कर रहे हैं।

इंग्लीश भाषामें लातीन भाषासे शब्द भर दिये जाते है, चिनी भाषासे नहीं। इसी तरह उक्त तीनों भाषाओंमें हिंदी-हिंदुस्थानी-उर्दूमें संस्कृतके या भारतीय भाषाकेही शब्द आने योग्य हैं। इसमें अरेबिक, पर्शियन, तुर्की वा ऐसीही विदेशी भाषाकेही नये शब्द लेनेकी निष्कारण प्रवृत्ति यदि किसीकी होगी, तो वह अनुचित है। क्योंकि किसी देशके शिष्ट ऐसा नहीं करते। इसलिये नये-शब्द लेनेके संबंधमें यही नियम योग्य है, इसलिये इसका सर्वत्र पालन होना चाहिये।

राष्ट्रभाषाका मूल शब्दभण्डार

भारत वर्षकी राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो इस समय बहुसंख्य लोग जानते, बोलते और व्यवहारमें लाते हैं। ऐसी भाषा ' हिंदी 'ही है क्योंकि तीन चौथाईसे अधिक हिंदी लोग हिंदीको न्यूनाधिक समझते है। यही इस कारण राष्ट्रभाषा है, अतः यह राष्ट्रभाषा बनानी नहीं है। वह राष्ट्रभाषा हैही।

हिंदुस्थानी या उर्दू उसकी बोलियां हैं। और हिंदीकी अपेक्षासे कम जनसंख्या इनको समझती है। उर्दू भारतमेंही उत्पन्न हुई है इसका किसी अन्य देशसे संबंध नहीं है। इसी कारण उर्दूमें भी भारतीयही शब्द घुसने चाहिये। यह सरल बात है। पर भारतीय मुसलमान उसमें अरबी फारसी शब्द अधिक घुसा रहे हैं और उर्दूको अधिक दुर्बोध कर रहे हैं। यह उनकी प्रवृत्ति अस्वाभाविक अतः हानिकारक है।

हालहीमें कायदे आझम जिना साहेबने कहा कि ' मैं हिंदी नहीं हूं ' (I am not an Indian) ऐसे कितने लोग मुस्लीम लीगमें हैं, यह बात स्पष्ट होनी चाहिये। जो अपने आपको हिंदी मानते नहीं, हरबातमें अरबकी ओर देखते रहते हैं, वे जो चाहे सो करते जांयगे, पर उनको भारतवासी, भारतप्रेमी हिंदु-मुसलमानोंने रोकना चाहिये।

भारतवर्षमें हिंदी, ब्रज, बंगला, पंजाबी, गुजराती, मराठी, कानडी, तेलगु, तामील आदि १७ या १८ प्रांतिक भाषाएं हैं। इनके कोश भी छपे हैं। इन कोशोंको देखनेसे पता चल सकता है कि इनमें संस्कृत, संस्कृतोद्भव, फारसी, अरबी, तुर्की, पुर्तुगीज, अंग्रेजी आदि भाषाओंके शब्द कितने हैं। जो इन भाषाओंके शब्द सभी देशी भाषाओंमें प्रयुक्त हो रहे हैं, वे शब्दही राष्ट्रभाषाका मूल शब्दभण्डार समझना योग्य है।

इन कोशोंके निरीक्षणसे पता चल सकता है कि इस राष्ट्रभाषाके इस मूल शब्दभण्डारमें कितने शब्द संस्कृतके हैं और कितने अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओंसे आये हैं। इस शब्दसंग्रहको राष्ट्रभाषाका मूल शब्दभण्डार समझना योग्य है। इसमें किसी तरहका दुराग्रह नहीं होना चाहिये।

श्री छत्रपति शिवाजी महाराजका राजा जयसिंहको पत्र

[औरङ्गजेबने अन्य मुसलमान सरदारोंके असफल होनेपर अपने एक हिन्दू सरदार, राजा जयसिंहको, छत्रपति शिवाजीके विरुद्ध दक्षिण-विजयके हेतु भेजा था। युद्धमें हिन्दुओंका ही दोनों ओर रक्तपात अवश्यंभावी जानकर हिन्दू-गौरवाभिलाषी शिवाजीने जयसिंहको यह पत्र लिखा।]

सर सर्वराँ राजए राजगाँ।
चमनबंद बुस्ताने हिंदोसताँ॥
जिगर् बंद फर्ज़ानए रामचंद।
जे तो गर्दने राजपूताँ बुलंद॥
कवीतर् जे तो दौलते बाबरी।
जे बख्ते हुमायूँ तुरा यावरी॥
जवाँ बख्त जैशाह बा राय पीर।
जे सेवा सलामो दरूदे पिज़ीर॥

जहाँ आफरीनत् निगहदार बाद।
तुरा रहनुमायव सुए दीनो दाद॥
शनीदम कि बर कस्दे मन् आमदी।
बफतहे दयारे दकिन आमदी॥
जे खूने दिलो दीदये हिंदुआँ।
तु ख्वाही शवी सुर्खरू दर जहाँ॥
न दानी मगरकी सियाही शवद।
कज़ीं मुल्को दीं रा तबाही शवद॥

अगर सर दमे दर गरबाँ कुनी।
बु नज्जारए दस्तो दामाँ कुनी॥

बबीनी कि ईं रंग अज खून कीस्त।
कि दर दो जहाँ रंग ईं रंग चीस्त॥
तु खुद आमदी पर बफतेह दकिन।
शुदे फर्शे राहत सेरो चश्मे मन॥

ए सरदारोंके सरदार, राजाओंके राजा, [तथा] भारतोद्यानकी क्यारियोंके व्यवस्थापक!

ए रामचंद्रके चैतन्य हृदयांश! तुझसे राजपूतोंकी ग्रीवा उन्नत है।

तुझसे बाबरवंशकी राजलक्ष्मी अधिक प्रबल हो रही है [तथा] शुभ भाग्यसे तुझसे सहायता [मिलती] है।

ए जवान (प्रबल) भाग्य [तथा] वृद्ध (प्रौढ) बुद्धिवाले जयशाह! सेवा (अर्थात् शिवा) का प्रणाम तथा आशिष स्वीकार कर।

जगत्का जनक तेरा रक्षक हो, [तथा] तुझको धर्म एवं न्यायका मार्ग दिखावे।

मैंने सुना है कि तू मुझपर आक्रमण करने [एवं] दक्षिण-प्रांतको विजय करने आया है।

हिंदुओंके हृदय तथा आँखोंके रक्तसे तू संसारमें लाल मुँहवाला (यशस्वी) हुआ चाहता है।

पर तू यह नहीं जानता कि यह [तेरे मुँहपर] कालख लग गई है, क्योंकि इससे देश तथा धर्मको आपत्ति हो रही है।

यदि तू क्षणमात्र, गरेबानमें सिर डाले (संकुचित होकर विचार करे) और यदि तू अपने हाथ और दामनपर (विवेक) दृष्टि करे,

तो तू देखे कि यह रंग किसके खूनका है और इस रंगका (वास्तविक) रंग दोनों लोकमें क्या है [लाल या काला]।

यदि तू स्वयं [अपनी ओरसे] दक्षिण-विजय करने आता, (तो) मेरे सिर और आँख तेरे रास्तेके बिछौने बन जाते।

शुदम् हमरकाबत् बफौजे गराँ।
सुपुर्दम् बतो अज कराँ ता कराँ॥

वले तू जे औरंगजेब आमदी।
बहग्वाय जाहिद फरेब आमदी॥
नदानम् कुनूँ चूँ बबाजम् बतो।
न मर्दी बुवद् गर बसाजम् बतो॥
कि मर्दाँ न दौराँ निवाजी कुनंद्।
हिजब्रां न रूबाहबाजी कुनंद्॥
वगर चारः साजम बतेगो तबर।
दो जानिब रसद हिंदुआँ रा जरर॥
दरेगा कि तेगम जेहद अज मियाँ।
जुज अजबन्हे खूं खुर्दने मुस्लिमाँ॥
चु तुर्का बर्दी कारजार आमदे।

बरे शेर मर्दां शिकार आमदे॥
वले आं सियहकारे बे दादो दीं।
कि देवस्त दर सूरते आदमीं॥
चु फज्ले जे अफजल नयामद पदीद।
न शाइस्तःकारी जे शाइस्तः दीद॥
तुरा बरगुमारद पए जंगे मा।
कि दारद न खुद ताबे आहंगे मा॥

बख्वाहद कि अज जुम्रए हिंदुआँ।
न मानद कवीपंजए दर जहाँ॥
बहम कुश्तःओ खस्तः शेरां शवंद।
शिगालां हिजब्रे नयस्तां शवंद॥
न ईं राज चूं दर सर आयद तुरा।
फुसूनश मगर बर गिरायद तुरा॥
बसे नेकों बद दर जहां दीदई।
गुलोखार अज बोस्तां चीदई॥
न बायद कि बामा नबर्द आवरी।
सरे हिंदुआं जेरे गर्द आवरी॥

बर्दी पुख्तःकारी जवानी मकुन।
जे सादी मगर यादगीर ईं सखुन॥

मैं तेरे हमरकाब (घोडेके साथ) बडी सेना लेकर चलता (और) एक सिरेसे दूसरे सिरेतक (भूमि) तुझे सौंप देता (विजय कर देता);

पर तू तो औरंगजेबकी ओरसे (उस) भद्र जनोंको धोखा देनेवालेके बहकानेमें पडकर आया है।

अब मैं नहीं जानता कि तेरे साथ कौन खेल खेलूँ। (अब) यदि मैं तुझसे मिल जाऊँ तो यह मर्दी (पुरुषत्व) नहीं है;

क्योंकि पुरुषलोग समयकी सेवा नहीं करते; सिंह लोमडी-पना नहीं करते।

और यदि मैं तलवार तथा कुठारसे काम लेता हूँ तो दोनों ओर हिंदुओंको ही हानि पहुंचती है।

बडा खेद तो यह है कि मुसलमानोंके खून पीनेके अतिरिक्त किसी अन्य कार्यके निमित्त मेरी तलवारको म्यानसे निकलना पडे।

यदि इस लडाईके लिये तुर्क आए होते तो [हम] शेर-मर्दोंके निमित्त [घर-बैठे] शिकार आए होते।

पर वह न्याय तथा धर्मसे वञ्चित पापी जो कि मनुष्यके रूपमें राक्षस है।

जब अफजलखांसे कोई श्रेष्ठता न प्रकट हुई, [और] न शाइस्ताखांकी कोई योग्यता देखी,

[तो] तुझको हमारे युद्धके निमित्त नियत करता है। क्योंकि वह स्वयं तो हमारे आक्रमणको सहनेकी योग्यता रखता नहीं।

[वह] चाहता है कि हिंदुओंके दलमें कोई बलशाली संसारमें न रह जाए,

सिंहगण आपसमेंही [लडभिडकर] घायल तथा श्रांत हो जाएं, जिससे कि गीदड जंगलके सिंह बन बैठें।

यह गुप्त भेद तेरे सिरमें क्यों नहीं बैठता ? प्रतीत होता है कि उसका जादू तुझे बहकाए रहता है।

तूने संसारमें बहुत भला बुरा देखा है। उद्यानसे तूने फूल और कांटे दोनोंहि संचित किए हैं।

यह नहीं चाहिये कि तू हम लोगोंसे युद्ध करे [और] हिंदुओंके सिरोंको धूलमें मिलावे।

ऐसी परिपक्व कर्मण्यता [प्राप्त होने] पर भी जवानी (यौवनोचित कार्य) मत कर। प्रत्युत सादीके इस कथनको स्मरण कर—

न हरजा मुरक्कब तवां ताखतन ।
कि जाहा सिपर बायद अंदाखतन ॥
पलंगां बगोरां पलंगी कुनंद ।
न बाजैगमां खानःजंगी कुनंद ॥
चु आबस्त दर तेगे बुरांने तो ।
चु ताबस्त दर अस्पे जौलाने तो ॥
ब बायद् कि बर दुश्मने दीं जनी ।
बुनो बेखे इस्लाम रा बरकनी ॥
अगर दावरे मुल्क दारा बुदे ।
बमा नीज लुत्फो मदारा बुदे ॥
वले तू बजसवंत दादी फरेब ।
ब दिल दर न कर्दी फराजो नशीब ॥
जेरूबाहबाजी न सेर आमदी ।
बजंगे हिजब्रां दिलेर आमदी ॥
अजीं तुर्कताजी चे आयद तुरा ।
हवांयत सुराबे नुमायद तुरा ॥
बदां सिफ्लःमानी कि जेहदे बरद ।
उरूसे बचंगाल खेश आवरद ॥
वले बर न अज बागे हुस्नश खुरद ।
बदस्ते हरीफे वरा बसपुरद ॥
चि नाजी तु बर मेहे आँ नाबकार ।
बदानी सरंजामे कारे जुझार ॥
बदानी कि बर बच्चए छत्रसाल ।
चेसां ख्वास्त ओ ता रसानद जवाल ॥
बदानी कि बर हिंदुआने दिगर ।
नयामद चे अज दस्ते आँ कीनःवर ॥
गिरफम् कि पैवंद बस्ती बदो ।
तु नामूस रा दर शिकस्ती बदो ॥
बरां देव दामे अजीं रिश्तः चीस्त ।
कि महकम तर अज बंदे शल्वार नीस्त ॥
पय कामे खुद ऊ न दारद हजर ।
जे खूने बिरादर जे जाने पिदर ॥
जे पासे वफा गर बदानी सखुन ।
चि कर्दी बशाहेजहां याद कुन ॥
अगर बहरःदारी जे फर्जानगी ।
जनी लाफे मर्दी ओ मर्दानगी ॥

" सब स्थानोंपर घोडा नहीं दौडाया जाता। कहीं कहीं ढाल भी फेंककर भागना उचित होता है।"

व्याघ्र मृगादि पर व्याघ्रता करते हैं, सिंहोंके साथ गृहयुद्धमें प्रवृत्त नहीं होते।

यदि तेरी काटनेवाली तलवारमें पानी है, यदि तेरे कूदनेवाले घोडेमें दम है,

[तो] तुझको चाहिये कि धर्मके शत्रुपर आक्रमण करे, [एवं] इस्लामकी जड-मूल खोद डाले।

अगर देशका राजा दारा-शिकोह होता, तो हम लोगोंके साथ भी कृपा तथा अनुग्रहके बर्ताव होते।

पर तूने जसवंतसिंहको धोखा दिया, [तथा] हृदयमें ऊंच नीच नहीं सोचा।

तू लोमडीका खेल खेलकर अभी अघाया नहीं है, [और] सिंहोंसे युद्धके निमित्त ढिठाई करके आया है।

तुझको इस दौड धूपसे क्या मिलता है? तेरी तृष्णा तुझे मृगतृष्णा दिखलाती है।

तू उस तुच्छ व्यक्तिके सदृश है जो कि बहुत श्रम करता है और किसी सुंदरीको अपने हाथमें लाता है,

पर उसकी सौंदर्यवाटिकाका फल स्वयं नहीं खाता, प्रत्युत उसको अपने शत्रुके हाथमें सौंप देता है।

तू उस नीच की कृपापर क्या अभिमान करता है? तू जुझारसिंहके कामका परिणाम जानता है।

तू जानता है कि कुमार छत्रसालपर वह किस प्रकारसे आपत्ति पहुंचाना चाहता था।

तू जानता है कि दूसरे हिंदुओंपर भी उस दुष्टके हाथसे क्या क्या विपत्तियां नहीं आईं।

मैंने माना कि तूने उससे संबंध जोड लिया है और कुलकी मर्यादा उसके सिर तोडी है,

[पर] उस राक्षसके निमित्त इस बंधनका जाल क्या वस्तु है, क्योंकि वह बंधन तो इजार बंधनोंसे अधिक दृढ नहीं है।

वह तो अपने इष्ट-साधनके लिये भाईके रक्त [तथा] बापके प्राणोंसे भी नहीं डरता।

यदि तू राजभक्ति की दुहाई दे, तो तू यह स्मरण कर कि तूने शाहजहांके साथ क्या बर्ताव किया।

यदि तुझको विधाताके यहांसे बुद्धिका कुछ भाग मिला है, [और] तू पौरुष तथा पुरुषत्वकी बडाई मारता है,

जे सोजे वतन तेग रा ताब् देह ।
जे अश्के सितम दीदःगां आब देह ॥
न मारा बहम् वक्ते पैकार हस्त ।
कि बर हिंदुओं कार दुश्वार हस्त ॥
जनो बच्चओ मुल्को हमलाके मा ।
बुतो माविदो आबिदे पाक मा ॥
हमः रा तबाहीस्त अज कारे ऊ ।
बजाए रसीदस्त आजारे ऊ ॥
कि चंदे चु कारश बेमानद चुनीं ।
निशाने न मानद जे मा बर जमीं ॥
तअज्जुब कि इक दस्तए मुस्लिमां ।
बरीं पहन मुल्कम् शवद हुक्मरां ॥
न ईं चीरःदस्ती जे मर्दानगीस्त ।
बबीं गर तुरा चश्मे फर्जानगीस्त ॥
चसां ऊ बमा मोहूः बाजी कुनद ।
चसां बर रुखश रंगसाजी कुनद ॥
कशद् पाय मारा ब जंजीरेमा ।
बबुरंद् सरेमा ब शमशीरे मा ॥
मरा जहद बायद फरावां नमूद ।
पए हिंदुओ हिंदो दीने हुनूद ॥
बबायद कि कोशेमो राये जनेम् ।
पए मुल्के खुद दस्तो पाये जनेम् ॥
बै शमशीरो तदबीर आबे दहेम ।
बतुर्की ब तुर्की जवाबे दहेम ॥
ब जसवंत गर तू मुवाफिक शवी ।
ब दिल दर्पए आंमुनाफिक शवी ॥
ब राना दमी हमदमे हमदमी ।
बे बायद कि कारे बर आयद हमी ॥
जे हर्सू बताजदो जंग आवरेद ।
सरे माररा जेरे संग आवरेद ॥
कि चंद ब पेचद बर अंजामखश ।
ने यारद बमुल्के दकिन दाम खश ॥
मन ईं सूब मर्दाने नेजःगुजार ।
अजीं हर दो शाहां बर आरम दमार ॥
ब अफवाजे गुरिंदा मानिंदे मेग ।
बेबारम अबर मुस्लिमां आबे तेग ॥

तो तू अपनी जन्मभूमिके संतापसे तलवारको तपावे [तथा] अत्याचारसे दुखियोंके आंसूसे [उसपर] पानी दे ।

यह अवसर हम लोगोंके आपसमें लडनेका नहीं है, क्योंकि हिंदुओंपर [इस समय] बडा कठिन कार्य पडा है ।

हमारे लडके बाले, देश, धन, देव, देवालय तथा पवित्र देवपूजक इन सबपर उसके कामसे आपत्ति पड रही है, [तथा] उनका दुःख सीमातक पहुंच गया है ।

यदि कुछ दिनतक उसका काम ऐसाही चलता रहा, [तो] हम लोगोंका कोई चिह्न [भी] पृथ्वीपर न रह जायेगा ।

बडे आश्चर्यकी बात है कि एक मुट्ठी भर मुसलमान हमारे [इतने] बडे इस देशपर प्रभुता जमावें ।

यह प्रबलता [कुछ] पुरुषार्थके कारण नहीं है । यदि तुझको समझकी आंख है तो देख,

[कि] वह हमारे साथ कैसी धोखेकी चालें चलता है, और अपने मुँहपर कैसा कैसा रंग रंगता है ।

हमारे पावोंको हमारीही सांकलोंसे जकडता है [तथा] हमारे सिरोंको हमारीही तलवारोंसे काटता है ।

हम लोगोंको [इस समय] हिंदू, हिंदूस्थान तथा हिंदूधर्म [की रक्षा] के निमित्त बहुत अधिक यत्न करना चाहिये ।

हमको चाहिये कि हम यत्न करें और कोई राय स्थिर करें [तथा] अपने देशके लिये खुब हाथ पांव मारें ।

तलवारपर और तदबीरपर पानी दें [अर्थात् उन्हें चमकावें और] तुर्कीको जवाब तुर्कीमें (जैसे का तैसा) दें ।

यदि तू जसवंतसिंहसे मिल जाय और हृदयसे उस कपट कलेवरके पैंडे पड जाय, [तथा] राणासे भी तू एकताका व्यवहार कर ले, तो आशा है कि बडा काम निकल जाये ।

चारों तरफसे धावा करके तुम लोग युद्ध करो । उस सांपके सिरको पत्थरके नीचे दबालो (कुचल डालो),

कि कुछ दिनतक वह अपनेही परिणामकी सोचमें पडा रहे [और] दक्षिणप्रांतकी ओर अपना जाल न फैलावे,

[और] मैं इस ओर भाला चलानेवाले वीरोंके साथ इन दोनों बादशाहोंका भेजा निकाल डालूं ।

मेघोंकी भांति गरजनेवाली सेनासे मुसलमानोंपर तलवारका पानी बरसाऊं ।

ब शोयम् जे इसलाम नामो निशां ।
जे लौहे दकिन अजकरां ताकरां ।।
अजां पए ब मर्दाने पैमूदःकार ।
बजंगी सवाराने नेजःगुजार ॥
चु दरियाय पुर् शोरिशो मौजजन ।
बर आयम ब मैदां जे कोहे दकिन ॥
शवम जूदतर हमरकाबे शुमा ।
अजो बाज पुर्सम हिसाबे शुमा ॥
जे हर चार सू सख्त जंग आवरेम ।
बरो अर्सए जंग तंग आवरेम ॥
बदेहली रसानेम अफवाजरा ।
बदां खानए खस्तः अमवाजरा ॥
जे नामश न औरंग मानद न जेब ।
न तेगे तअद्दी न दामे फरेब ॥
बरारेम जूए पुर अज खूने नाब ।
बरूहे बुजुर्गो रसानेम आब ॥
बनैरूए दादारे जां आफरीं ।
बसाजेम जायश बजेरे जमीं ।।
न ईं कार बिसियार दुशवार हस्त ।
दिलो दीदओ दस्त दर्कार हस्त ॥
दो दिल् यक शवद् बेशकुनद् कोहरा ।
परागंदगी आरद् अंबोहरा ॥
अजीं दर् मरा गुफ्तनीहा बसेस्त ।
कि दर् नामः आवुर्दनश राय नेस्त ॥
बख्वाहम कि रानेम बाहम सखुन ।
ने यारेम बे सूद रंजो मेहन ॥
चु ख्वाही बे आयम बदीदारे तो ।
बगोश आवरम राजे गुफ्तारे तो ॥
बखल्वत कुशायेम रूए सखुन ।
कशम शानः बर पेचे मूए सखुन ॥
ब दामाने तदबीर दस्त आवरेम ।
फुसूने बरां देव मस्त आवरेम ॥
तराजेम राहे सुए कामे ख्वेश ।
फराजेम दर दो जहां नामे ख्वेश ॥

दक्षिण देशके पटलपरसे एक सिरेसे दूसरे सिरेतक इस्लामका नाम तथा चिह्न धो डालूं।

इसके पश्चात कार्यदक्ष शूरों तथा भाला चलानेवाले सवारोंके साथ लहरें लेती हुई तथा कोलाहल मचाती हुई नदीकी भांति दक्षिणके पहाडोंसे निकल कर मैदानमें आऊं,

और अत्यंत शीघ्र तुम लोगोंकी सेवामें उपस्थित होऊं और फिर उससे तुम लोगोंका हिसाब पूछूं,

[फिर हम लोग] चारों ओरसे घोर युद्ध उपस्थित करें और लडाईका मैदान उसके निमित्त संकीर्ण कर दें।

हम लोग अपनी सेनाओंकी तरंगोंको, दिल्लीमें, उस जर्जरीभूत घरमें, पहुंचा दें।

उसके नाममें न तो औरंग (राजसिंहासन) रह जाये और न जेब (शोभा), न उसकी अत्याचारी तलवार [रह जाय] और न कपटका जाल।

हम लोग शुद्ध रक्तसे भरी हुई एक नदी बहा दें [और उससे] अपने पितरोंकी आत्माओंका तर्पण करें।

न्यायपरायण प्राणोंके उत्पन्न करनेवाले (ईश्वर) की सहायतासे हम लोग उसका स्थान पृथ्वीके नीचे (कब्रमें) बना दें।

यह काम [कुछ] बहुत कठिन नहीं है। [केवल यथोचित] हृदय, आंख, तथा हाथकी आवश्यकता है।

दो हृदय (यदि) एक हो जायें तो पहाडको तोड सकते हैं [तथा] समूहके समूहको तितरबितर कर सकते हैं।

इस विषयमें मुझको तुझसे बहुत कुछ कहना [सुनना] है, जिसको पत्रमें लाना (लिखना युक्ति) सम्मत नहीं है।

मैं चाहता हूं कि हम लोग परस्पर बातचीत कर लें, जिससे कि व्यर्थमें दुःख और श्रम न मिले।

यदि तू चाहे तो मैं तुझसे साक्षात् बातचीत करने आऊं [और] तेरी बातोंको श्रवणगोचर करूं।

हम लोग बातरूपी सुंदरीका मुख एकांतमें खोलें [और] मैं उसके बालोंके उलझनपर कंघी फेरूं।

यत्नके दामनपर हाथ धर उस उन्मत्त राक्षसपर कोई मंत्र चलावें।

अपने कार्यकी [सिद्धि की] ओरका कोई रास्ता निकालें [और] दोनों लोकों (इहलोक तथा परलोक) में अपना नाम ऊंचा करें।

बतेगो बअस्पो बमुल्को बदीं।
कि हर्गिज गजंदत न आयद् अर्जीं ॥

जे अंजामे अफजल मशौ बद्गुमां।
कि ओरा न बुद् रास्ती दरमियां ॥
जे जंगी सवाराने परखाशजू।
हजारो दो सद् दर कमी दाश्त ऊ ॥
अगर पेश दस्ती न कर्दम बरो।
कि ईं नामः अकनूं नविश्ते बतो ॥
मरा बातो चश्मे चुनीं कार नेस्त।
तुरा खुद बमन नीज पैकार नेस्त ॥
जवाबत बयाबम् अगर बाशवाब।
शब आयम् ब पेशे तो तनहा शिताब ॥
नुमायम् बतो नामःहाए निहां।
कि बगिर फ्तम अज जेबे शायस्तःखां ॥
जनम आबे अंदेशः बर दीद:अत।
कुनम् दूर ख्वाबे पसंदीद:अत ॥
कुनम् रास्त् ताबीर ख्वाबे तुरा।
वजां पस बगीरम् जवाबे तुरा ॥
नयायद् चु ईं नामः हमजाजे तो।
मनो तेग बुर्रानो अफवाजे तो ॥
चु खुर्शेद फर्दा कशद् रू ब शाम्।
हिलालम् नेयाम अफनगद् वस्त लाम ॥

तलवारकी शपथ, घोडेकी शपथ, देशकी शपथ, तथा धर्मकी शपथ करता हूं कि इससे तुझपर कदापि [कोई] आपत्ति नहीं आयेगी।

अफजलखांके परिणामसे तू शंकित मत हो, क्योंकि उसमें सचाई नहीं थी।

बारह सौ बडे लडाके हब्शी सवार वह मेरे लिये घातमें लगाये हुए था।

यदि मैं उसपर पहिलेही हाथ न फेरता, तो इस समय यह पत्र तुझको कौन लिखता ?

[पर] मुझको तुझसे ऐसे कामकी आशा नहीं है, [क्योंकि] तुझको भी स्वयं मुझसे कोई शत्रुता नहीं है।

यदि मैं तेरा उत्तर यथेष्ट पाऊं, तो तेरे समक्ष रात्रिको अकेले आऊँ।

मैं तुझको वह गुप्त पत्र दिखाऊं, जो कि मैंने शाइस्ताखांकी जेबसे निकाल लिये थे।

तेरी आँखोंपर मैं संशयका जल छिडकूँ [और] तेरी सुख-निद्राको दूर करूं,

तेरे स्वप्नका सचा सचा फलादेश करूं [और] उसके पश्चात् तेरा जवाब लूं।

यदि यह पत्र तेरे मनके अनुकूल ना पडे [तो फिर] मैं हूं और काटनेवाली तलवार तथा तेरी सेना।

कल, जिस समय सूर्य अपना मूँह संध्यामें छिपा लेगा, उस समय मेरा अर्धचंद्र [खड्ग] म्यानको फैंक देगा [मियानसे निकल आवेगा]। बस भला हो।

रूसी रीछकी छिपी चाल

आज भारतमें ब्रिटिश शिष्टमण्डल इस निर्धारसे आ पहुंचा है कि, वह भारतके राजकीय स्वातन्त्र्यका निर्णय लगाकरही छोडेगा। इस शिष्टमण्डलके आगमनके अनेक कारणोंमेंसे भारतमेंका तीव्र असन्तोष, और सूक्ष्मासूक्ष्म साधनोंके द्वारा स्वातन्त्र्य प्राप्त करा लेनेका भारतीय तरुणोंका निश्चय ये तो प्रधान कारण हैंही। परन्तु बाहरी स्फोटक परिस्थिति यह कारण भी कुछ कम महत्त्वका नहीं है। अगर हम इस परिस्थितिके अद्ययावत् ज्ञानके विषयमें अंधेरमें रहे, तो फिर इस शिष्टमण्डलके साथ जो बातचीत होगी, वह गलत रास्तेसे होनेका अधिक सम्भव है। और फिर शायद हमारे देशका अधिकसे अधिक लाभ करा लेनेमें हम लोग असमर्थ रहेंगे। इसीलिये इस बाह्य परिस्थितिका त्रोटक दिग्दर्शन यहां किया जा रहा है।

यह दूसरा जागतिक महायुद्ध समाप्त हो जानेपर यद्यपि सारे विश्वमें न्याय, समता, स्वातन्त्र्य प्रस्थापित करनेके गीत गाये गये, तो भी वह चिरवाञ्छित स्वातन्त्र्यका सुमधुर ध्येय उतनाही सुदूर है, जितना कि वह पहले था। मानवी स्वभावमें कोई भी परिवर्तन नहीं हुवा है। जैसा कि वह कल था वैसाही आज है। और जबतक उसमें परिवर्तन होनेकी कोई संभावना नहीं है, तबतक वह ध्येय खपुष्प बनकरही रहेगा। इसलिये जब विश्वबन्धुत्वके मंगलगीत गाये जाते हैं, तब हाथमें अपने संरक्षणके लिये प्रभावी नग्न खड्ग सिद्ध रखना चाहिये, इस बातको भूलकर सब राष्ट्रोंका विशेषतः हमारे विचारे भारतका नहीं चलेगा।

जब कि गत महायुद्ध समाप्त हुवा, तबहीसे इंग्लैण्ड और रूस इन दोनोंमें तीव्र स्पर्धा शुरू हो गई है। सोव्हिएत रूस और उसका सूत्रधार स्तालिन वह उतनाही साम्राज्य-पिपासू है जितना कि इंग्लैण्ड और उसका भूतपूर्व प्रधान चर्चिल। गत महायुद्धकी समाप्तिसे रूसके सारे उद्योग भी इसी दृष्टिसे चल रहे हैं।

रूसको समुद्री-सत्ता चाहिये

रूसका साम्राज्य यूरप और आशिया इन दोनों खण्डोंमें विस्तारित है। परन्तु आज किसी भी समुद्रपर खुले आम उसका अधिकार नहीं है। गत अनेक शताब्दियोंसे रूस इस समुद्रीसत्ताका प्यासा है। उसके सूत्रधार, फिर वह चाहे झार हो चाहे स्तालिन इस पिपासाको तृप्त करनेके लिये प्रयत्नशील हैं। इस महायुद्धके बाद रूसको यह चिरवाञ्छित सन्धि प्राप्त हुई है। और अब रूसी रीछ दो भिन्न भिन्न मार्गोंसे समुद्रपर कबजा करनेके लिये छिपकर कदम बढा रहा है। पहला मार्ग तुर्कस्थानके दार्दानेलिस सामुद्रधुनीमेंसे होकर भूमध्यसमुद्रकी ओरका। और दूसरा है ईरानके आखातसे होकर भारतवर्षके अरबी समुद्रका।

दार्दानेलिसका मार्ग

तुर्कस्थानकी रुकावट दूर करनेसेही यह मार्ग रूसके हस्तगत हो सकता है। प्रत्यक्ष तुर्कस्थानका फौजी सामर्थ्य यह रूसके लिये कोई बडी बात नहीं। परन्तु तुर्कस्थानकी ओरमें छिपी हुई ब्रिटिश सत्ताका विरोध यही रूसके लिये विचारणीय है। शान्तताके कालमें तो दार्दानेलिसकी सामुद्रधुनी आन्तरराष्ट्रीय स्वामित्वकी होही गई है। परन्तु रूस यह चाहता है कि युद्धकालमें भी उसपर उसीका अधिकार चले। अर्थात् रूस जब चाहेगा तब अपना नाविक दल कृष्ण-समुद्रमेंसे भूमध्यसमुद्रमें लाकर इंग्लैण्डकी भूमध्यसमुद्रमेंसे होकर जानेवाली शासनलिपर दबाव डाल सके। इसी विचारसे उसने तुर्कस्थानके पास दार्दानेलिसमेंके कुछ द्वीपोंकी मांग अपने हवाई तथा नाविक दलके अड्डे बनानेके लिये की है। अर्थात् इस मांगको इंग्लैण्डही तुर्कस्थानको आगे बढाकर विरोध कर रहा है। सन १९४६में प्रत्येक राष्ट्रके आवागमनके विषयमें करार किये हुवे मेंट्रिकन्हेन्शनकी योजनाका जो विचार होनेवाला है, उसमें अमरीका भाग लेना चाहती है ऐसा

उसके द्वारा तुर्कस्थानको सूचित किया गया है। यह बात निश्चित है कि इस बातचीतके समय अमरीका भी इंग्लैण्ड और तुर्कस्थानकी बाजूको खडी हो जायगी, और रूसको होनेवाला विरोध अधिक उग्र स्वरूप धारण करेगा। इंग्लैण्ड और रशिया इनके झगडेमेंका यह पहिला मर्मस्थल है। अभी अभी वृत्तपत्र प्रतिनिधिओंकी मासिक चर्चामें इस खलितेके बारेमें तुर्कस्थानके पन्तप्रधान साराजुग्लु इन्होंने निवेदन किया।

तुर्कस्थानकी उत्तरी सीमाको शह

एवं तुर्कस्थानको दार्दानेलिसका शह देनेके बाद रूसने सोविएत आर्मिनियाकी ओरसे उत्तरी तुर्कस्थानका कार्स जीला वापस मांगनेको बडे जोरसे प्रारम्भ किया है। वैसेही जॉर्जिया जोकि ईसवी सन १९२४में रूस साम्राज्यमें शामिल हुवा, तुर्कस्थानसे अपने सन १९२१में दबाये हुवे अर्दाहान, आर्टिव्ह इत्यादि आठ जीलोंकी मांग कर रहा है। एवं च दार्दानेलिसके विरोधका भार कम हो, इसलिये रूसने तुर्कस्थानपर उत्तरकी ओरसे सोविएत आर्मिनिया और जॉर्जिया ये दो शिकारी कुत्ते छोड दिये हैं। और आश्चर्यकी बात यह है कि तुर्कस्थानके ये जो टुकडे नोचे जा रहे हैं; वे स्वयंनिर्णयके शर्करावगुण्ठित नामपर ! क्या हमारे नेता स्वयंनिर्णयके इस घातक उपयोग की ओर ध्यान देकर फिर प्रान्तिक स्वयंनिर्णयकी बातें करेंगे ?

पॅलेस्टाइन

आजतक यहूदी और अरब इनके झगडेमें रूस तटस्थ था। परन्तु दार्दानेलिसके सत्तासम्पादनके कारस्थान जैसे रंगते जाने लगे, और जब कि अमरीका और इंग्लैण्ड यहूदीओंका पक्ष लेते हुवे दिखाई देने लगे, वैसेही अचानक रूसका अरब राष्ट्रोंका प्रेम अत्यधिक बढकर बह जाने लगा। अब सारेके सारे अरब राष्ट्र रूसके पक्षके हो गये हैं। रूस यह मुस्लिम राष्ट्रोंका तारण हार बन गया है। और ठीक इसी समयपर बॅ. जिन्ना साहब अरब राष्ट्रों-के पक्षपाती बनकर उनकी बाजूसे आवाज उठा रहे हैं। आप अब इंग्लैण्डका निषेध करनेमें लग चुके हैं। वह रूस और पाकिस्तानी मुसल्मान इनका पहिला सम्बन्ध है। (Point of Cantact)

ईरानका अखाता

इस पद्धतिसे जब कि रूस समुद्री–सत्ताका दार्दाने-लिसका पहिला मार्ग आक्रमण कर रहा है, उसी समय ईरानी आखातकी ओर भी यह रीछ छिपी चालसे परन्तु वेगसे बढ रहा है। इस चालका पहिला मोर्चा है।

अझर बैझानका लोकसत्ताक

अझर बैझान यह छब्बीस लक्ष जनसंख्याका तथा ३२००० चौरस मीलका शियापन्थी मुसल्मानोंका एक प्रान्त कॉकेशसपर्वतसे लेकर उत्तरी ईरानतक फैला हुवा है। १९२७में अनेक घटनाओंके बाद इसका आधा हिस्सा सोविएतमें शामिल हुवा। बचे हुवे अझर बैझानमें अभी अभी रूसके उकसानेसे तथा साह्याय्यसे विद्रव होकर अझर बैझान प्रान्त ईरानसे जुदा हुवा, और रूसीयचैनलमें एक लोकसत्ताक बन गया। यह विच्छेदकर्म भी स्वयं-निर्णयके पवित्र सिद्धान्तके अनुसारही हुवा।

और एक प्रान्त–कुर्दिस्थान

रूसके इस छिपी चालकी दौड प्लेगके जैसी वेगके साथ विस्तृत हो रही है। अभी अभी तो अझर बैझानका विच्छेदीकरण सम्पूर्ण हुवा है कि अकस्मात् ईरान–ईराकके उत्तरमें बसा हुवा कुर्दिस्थान भी स्वयंनिर्णयकी मांग कर रहा है। एवं च इस विवेचनसे स्पष्ट हो चुका है कि रूस ईरानके आखातकी ओर वेगसे बढ रहा है।

प्रत्यक्ष ईरान

जब कि रूसके ये सब उपद्व्याप चल रहे हैं, ठीक उसी समय प्रत्यक्ष ईरानकी चाल बडी संशयास्पद हो रही है। बहोत दिनोंसे ईरानका वकील मॉस्कोमें जा बैठा था। यह अभीतक गुप्त है कि उसने वहाँ क्या बातचीत की। अभी थोडेही दिन हुवे, वह वापस लौटा है। उसने कहा कि 'समझौता होनेकी शक्यता है।' इतनेहीमें तार आ पहुँचा कि रूसका ईरानमेका सैन्य इंग्लैण्ड, अमरीका, और रूस इनके करारके अनुसार वापस लौटनेकी बजाय तेहरान-से बीस बाईस मीलपर आ पहुंचा। प्रत्यक्ष ईरानी पन्त-प्रधानको पूछनेपर उन्होंने कहा कि 'मुझे कुछ भी मालूम नहीं है!' इतनेमें तेहरानका आकाशवाणी केन्द्र बन्द हो गया। क्या इसका अर्थ यही है, कि दक्षिण ईरानमें

अभीतक ब्रिटीश बल सुप्रतिष्ठित है, इसीलिये ईरान खुल्लमखुल्ला रूसका पक्षपाती नहीं हो सकता ? यद्यपि ईरानने परसोंही यू. एन्. ओ. के संरक्षक दलके सामने रूसके खिलाफ तक्रार उपस्थित की है, तोभी साथही साथ पंतप्रधान गव्हाम एल, सुलतानेह इन्होंने कहा कि 'अभी भी रूससे समझौता होना सहज शक्य है।' तब फिर यू. एन्. ओ. के सामने रूसके विरुद्ध तक्रार क्यौं उपस्थित की ? क्या इंग्लैण्डको बतानेके लिये रूस और इरान इन दोनोंमे यह कृतक-कलह चल रहा है ? क्या इंग्लैण्डको मुहपर हाँ हाँ करते हुवे ईरान पीछेसे रूसको निमन्त्रण दे रहा है ?

अबतक हम ये त्रोटक रूपेण देख चुके कि दार्दानेलिससे लेकर मध्य आशियाके ईरानतक एक अरबस्थान छोडकर अन्य मुस्लिम राष्ट्रोंको रूस इंग्लैण्डके खिलाफ अपने झण्डेके नीचे कैसे एकत्रित कर रहा है। अब इस अफगानिस्थानका उल्लेख करना आवश्यक है जो कि हिन्दुस्थानकी वायव्य सीमापर बसा हुवा है।

अफगानिस्थानमे भी रूसके हस्तक पहुंच गये हैं। सुप्रसिद्ध आन्तरराष्ट्रीय लेखक श्री. तारकानाथ दास लिखते हैं कि यद्यपि आज अफगानिस्थानकी सरकार इंग्लैण्डकी मित्र है, तोभी उस देशमें जो घटनाएँ घटित हो रहीं हैं, उनपरसे विद्यमान सरकार उलथकर वहाँ रूसकी मित्र सरकार निर्माण होना सहज संभवनीय है।

मध्यबिन्दु हिन्दुस्थान

इस विवेचनसे वाचकोंके ध्यानमें आगया होगा कि एक तुर्कस्थान छोडकर दार्दानेलिससे लेकर हिन्दुस्थान-तकका सर्व मुस्लिम विश्व रूसने अपने वश कर लिया है। गत दो महायुद्धोंमे सबका सब पश्चिम तथा मध्य आशिया इंग्लैण्डके खिलाप हो जानेपर भी उसने केवल हिन्दुस्थानके बलपर उन सब शत्रुओंका निःपात किया यह बात सर्व विश्वने अपने आँखों देखली है। इसलिये गत दशकसे ब्रिटिश सत्ताका मध्यबिन्दु तथा उसके सामर्थ्यका उद्गम स्थान जो भारतवर्ष, वहींपर विप्लव निर्माण करनेका प्रयत्न रूसने चलाया है। यह बात अब किसीसे भी छिपी हुई नहीं रही कि भारतमेंका कम्युनिस्ट पक्ष यह एक रूसके द्वारा लालित पालित पक्ष है। यद्यपि गत महायुद्धमें हिन्दुस्थान-सरकार तात्कालिक रीतिसे इस भस्मासुरको अवदान देती रही, तोभी आजकल सरकारने भी इस पक्षके साथ सम्बन्ध विच्छेद किया है। परन्तु उस पक्षको एक दूसरा सखा मिल गया है। वह सखा भी सरकारकेही द्वारा लालित है। उसका नाम है मुस्लिम लीग तथा उसका सर्वाधिकारी बॅ० जिन्नासाहब। उत्तरभारतमें यह वार्ता बहोत दिनोंसे प्रसृत हैं कि मुस्लिम लीगको रूसने उसकाया है। परन्तु कल परसों म० गान्धीजीके साथ नामदार आगाखान और भोपालके नवाब इनकी जो मुलाखात हो गयी, उस समय भोपाल नवाबके गृहमन्त्री श्री. कुरेशी इन्होंने एक वृत्तपत्रकारके समक्ष यों कहा कि 'सोविएत सरकार जिन्नासाहबकी पाकिस्थानी योजनाको पुष्टि दे रही, तथा उसे द्रव्य-सहाय्य भी दे रही, ऐसा पता एक विश्वस्त स्थानसे चला है।' यह वृत्त अहमदाबादसे प्रकाशित होनेवाले प्रसिद्ध गुजराथी वृत्रपत्र 'हिन्दु' में दि० १७-३-४६ को प्रसिद्ध हुवा है।

इस बातको सिद्ध करनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण भी हमारे पास मौजूद है। गत चुनावके समयसे जिनके तत्वोंमें उत्तर-दक्षिणध्रुवके समान विरोध है, ऐसे कम्युनिस्टपक्ष और मुस्लिमलीग बडे प्रेमके साथ हाथमें हाथ मिलाकर काम कर रहे हैं! ईरानके समानही हिन्दुस्थानकी स्थिति करनेके लिये रूसने वहाँपर इस कौटिल्यका उपयोग किया है।

तात्पर्य इंग्लैण्डके खिलाफ दार्दानेलिससे लेकर हिन्दुस्थानतक एक मजबूत तटबन्दी निर्माण करनेमें रूस सफल हो रहा है। अब ऐसी परिस्थितिमें इंग्लैण्डका साथ दे सकती है ऐसी समर्थ शक्ति भारतवर्षमें केवल एकही मौजूद है। वह है हिन्दुशक्ति तथा उसका ध्येय अखण्ड हिंदुस्थान। और केवल इसीलिये इंग्लैण्डके मुख्य प्रधान ॲटली इनका इतना स्वागतार्ह भाषण सुननेका भाग्य हमे प्राप्त हुवा है।

हिन्दी महासागर और हिन्दुस्थान

गत महायुद्धसे आगतिक जहाजी बेडोंकी परिस्थितिमें महान् परिवर्तन हुवा है। महायुद्धके पूर्व ब्रिटिश, अमरिकन तथा जपानी जाहाजी बेडोंका प्रमाण पांच, पांच और तीन ऐसा था। अर्थात् इंग्लैंड और अमरीका सबल थे और इंग्लैंड जापानसे करीब करीब दुगना था। महायुद्धके कालमें जर्मनीने अपनी पनडुब्बीओंकी सहायतासे ब्रिटिश बेडेसे लडना शुरू किया, और जापानी बेडेने अमरीकाको आव्हान दिया। यदि जर्मन तथा जापानी बेडे ब्रिटिश तथा अमरीकन बेडोंपर विजय पा जाते, तो महायुद्धमें जयश्री जर्मनी-जापानकी ओर चली जाती। परन्तु युद्धकालमें अमरीकाने अपना नाविक बल दुगना किया। पासिफिक और अतलांतिक महासागरमें कामयाब हो सकता है, इतना बल अमरीकाने बढा लेते बराबर जयश्री दोस्तोंकी ओर कृपादृष्टिसे देखने लगी। जिसका समुद्रपर अधिकार नहीं, वह युद्धमें अन्तिम विजय नहीं पा सकता, यह बात पहिले महायुद्धने सिद्ध की, और इस दूसरे महायुद्धने उसीको दोहराया। युद्धमें विजयके साथही ब्रिटिश साम्राज्य भी समुद्री स्वामित्वपर अवलम्बित है। ब्रिटिश सत्ताके सम्मुख आज यही प्रश्न उपस्थित है, कि वह स्वामित्व सुरक्षित कैसे रखा जाय। इस महायुद्धके बाद इंग्लैंड यह पहिले दर्जेका नाविक राष्ट्र नहीं रहा। यद्यपि यह बात मान ली, कि अमरीकाने अपना नाविक बल अतलान्तिक और पासिफिक महासागर संभालने इतना अर्थात् दुगना बढाया है, और ब्रिटनके पास पहले ही इतना बल मौजूद है, तो भी अमरीकाकी शक्ति आज इंग्लैण्डसे दुगनी है। इस महायुद्धमें जिसका अवतार हुवा उस हवाई जहाजोंके नूतन तन्त्रके कारण नाविक दलके आजके स्वरूपमें कुछ अवश्य परिवर्तन करना होगा। पहले महायुद्धके बाद बेडर लडाकू जहाजोंको महत्व प्राप्त हुवा। अब इस दूसरे महायुद्धने उस महत्वका प्रदान हवाई-जहाजवाहक लडाकू जहाजोंको किया है। इसी दृष्टिसे अमरीका बडे जोर शोरसे इस नूतन पुनर्रचनामें लग चुकी है। और इंग्लैण्डकोभी उसीका अनुसरण करना होगा। साथही साथ इंग्लैण्डको अपना हवाई दल और भूमियुद्धके टँकस् आदि साधनोंकी वृद्धिमें भी अपनी शक्ति खर्च करनी होगी।

आज इंग्लैण्ड और अमरीका इन दोनोंका संबंध मित्रताका है, और कदाचित् वह आगे भी कायम रहेगा। परन्तु यदि भूमि, समुद्र, और आकाश इनके युद्धसाधनोंमें इंग्लैण्डने अमरीकाकी बराबरी नहीं की, तो आगे चलकर अमरीकाकी दृष्टिसे इंग्लैण्ड यह दूसरे दर्जेका राष्ट्र माना जायगा। गत महायुद्धने यह सिद्ध किया कि इंग्लैंडकी अखण्ड समुद्री सत्ता बीचमें खण्डित हो सकती है और उसका फल भी इंग्लैंडके लिये अच्छा नहीं निकलता। यद्यपि भूमध्यसमुद्रके जिब्राल्टर, माल्टा और स्वेझ इन तीन मर्म स्थानोंको इंग्लैण्डके मजबूत जहाजी बेडे सम्हालते रहे, तोभी उसका जलमार्ग रोक रखना अथवा खंडित करना शत्रुको विनायास सहजशक्य है। इस दूसरे महायुद्धमें अफ्रीकाको चक्कर लगाकर हिंदुस्थान और ऑस्ट्रेलिया इनके साथ अपना संबंध कायम रखते रखते इंग्लैण्डके नाकों दम आगया। अगर अफ्रीकाको चक्कर लगाना भी युद्धपरिस्थितिके कारण असम्भव हो जाता, तब तो उस अवस्थामें हिन्दुस्थान, ऑस्ट्रेलिया तथा भूमध्यसमुद्रमें ईजिप्त ये भूमिखण्ड समुद्री बचावके दृष्टिसे सहाय्यहीन हो जाते।

जैसे कि दूसरे महायुद्धने समुद्री बलका प्रमाण तथा परिस्थिति इनमें महान् परिवर्तन कर दिया, वैसेही उसने ब्रिटिश समुद्री दलकी रचनामेंके दोष भी स्पष्ट कर दिये हैं। ऐसा कहनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं कि आज हिन्दुस्थान के भवितव्यके विषयमें चलनेवाली बातचीत यह उन दोषोंको हटानेके लिये जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनमेंका एक भाग है। इंग्लैण्ड आजतक अपने नाविक दलकी घमण्डपर अपने जलमार्गोंपर बसे हुवे ईजिप्त, हिन्दुस्थान

और आस्ट्रेलिया इनकी ओर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा करता था। परन्तु अब परिस्थितिमें परिवर्तन हो गया है। इसके बाद इंग्लैण्डको अपनी लष्करी ताकत, हवाई जहाजोंका सामर्थ्य और भूमध्य समुद्र तथा अटलाण्टिक महासागर इनमेंका नाविक बल बढानाही होगा।

इसके लिये इंग्लैण्डको सुविधाएँ चाहिये। अब इंग्लैण्ड अगर वे सुविधाएँ चाहता है, तो उसे ईजिप्त, हिंदुस्थान तथा ऑस्ट्रेलिया इनको नाविक दलकी दृष्टिसे सामर्थ्य-सम्पन्न तथा स्वयंपूर्ण किये बिगर नहीं चलेगा। अगर इंग्लैण्ड इन प्रयत्नोंमें यशस्वी हुवा तोही फिर अगले महायुद्धमें बिना इंग्लैण्डके सहाय्यके ईजिप्तके नेतृत्वका स्वीकार करके अरब देश पूर्वी भूमध्य समुद्रका रक्षण करेंगे। ऑस्ट्रेलिया पासिफिक सम्हालेगा। और हिन्दुस्थान हिन्दी महासागरकी रक्षा करेगा। नैसर्गिक रचनासेही हिन्दी महासागरका नेतृत्व हिन्दुस्थानकी ओर आ जाता है। हिन्दी महासागरका मध्यबिन्दु हिन्दुस्थान है। और उस महासागरके उत्तरी तटपर हिन्दुस्थानके जैसा विशाल सुसम्पन्न और अग्रेसर देश अन्य कोई नहीं है। यही बात है अफ्रीकाके पूर्वी तटके सम्बन्धमें। अगर इंग्लैण्ड यह चाहता है कि हिन्दी महासागरकी रक्षाका यह भार हिन्दुस्थान इंग्लैंण्डका मित्र इस नातेसे उठावे, तब फिर हिन्दुस्थान राजकीय दृष्टिसे संपूर्ण, स्वतन्त्र तथा सुखी हो जाना चाहिये। ईजिप्तके विषयमें भी यही बात है।

इस परिस्थितिको ध्यानमें लेकरही ईजिप्तके साथ इंग्लैण्ड राजनैतिक सम्बन्धमें बातचीत कर रहा है। और इसीलिये आज हिन्दुस्थानमें सरकारी शिष्टमण्डल आ पहुंचा है। ब्रिटिश हितसंबन्धका जलमार्ग यही ब्रिटिश साम्राज्यका जलमार्ग है।

अगर इंग्लैण्ड चाहता है कि इन जलमार्गोंको सम्हालनेकी जबाबदारी उसपर न पडते हुवे वह अपनी दूसरे महायुद्धने खाई हुई शक्ति तथा दर्जा फिरसे प्राप्त करा ले, तब फिर उसे इन जलमार्गोंपर अपने साम्राज्यमेंसेही प्रभावी स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माण करने चाहिये। इस वस्तु-स्थितिको ध्यानमें लेकरही नाविक-मन्त्रीके साथ ब्रिटिश शिष्टमण्डल भारतमें आ पहुंचा है। पूर्ण सत्तात्यागसे हिन्दुस्थानको सन्तुष्ट किये बिना उस मण्डलके पास अन्य कोई उपाय नहीं। क्या यह विधान असंगत है?

साधना

(ले०- श्री० गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर, औंध)

चन्द्रशेखर यह एक एम्. ए. का काशीविश्वविद्यालयका विद्यार्थी था। तत्त्वज्ञान उसका विषय था। चन्द्रशेखर विश्वविद्यालयके विद्यार्थी-गृहमें रहा करता। प्रारंभसेही वह आध्यात्मिक मनोवृत्तिका मनुष्य था। विश्वविद्यालयीन विद्यार्थी जिस प्रकारका मौजी जीवन बिताते हैं, वैसा जीवन इसे अच्छा न लगा करता था।

जब विद्यार्थीगण अपने वार्षिकसंमेलनके नाट्य आदिकी व्यवस्थामें लगे रहते तब चन्द्रशेखर चुपकेसे अपनी साइकल निकालकर गंगाजीके तटपर एकान्तमें जाना अधिक पसंद करता। न तो उसे उनके हास्यविनोदसे रुचि थी, न उनके रोमान्ससे। वे मजाकमें इसे शुकाचार्य कहा करते। वह जरासा हँसकर उस उपाधिपर प्रत्युत्तर न किया करता। इस मजाकको कृतिमें लाना भी उन विद्यार्थियोंके लिये असंभव न था। परन्तु चन्द्रशेखरके प्रचण्ड शरीरको देखकर उनकी वह विनोद-प्रवृत्ति शब्दोंतकही रुक जाती।

चन्द्रशेखरको अपने अभ्यास-क्रममें कान्ट आदि पाश्चात्य तत्त्वज्ञोंके ग्रंथोंका अध्ययन करना पडा। परन्तु उसे इन पाश्चात्य ग्रंथोंसे भारतीय तत्त्वज्ञानही अधिक रुचिकर जान पडा। जब वह 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' इस वचनको पढता तब आश्चर्यसे कुंठित हो आया करता। वह सोचा करता 'क्या सचमुच हमारे ऋषि इतनी उच्च भूमिकापर विराजमान थे? क्या सचमुच वे इस विश्वको ब्रह्मरूप देखा करते थे? इस सारे विश्वको? क्या दुःख भी उनके लिये ब्रह्मरूप था? क्या मृत्यु भी?'

प्रतिदिन वेदान्तसे उसकी रुचि बढती गई। नाना ग्रन्थ उसने पढ डाले। प्रत्येक ग्रन्थमें इसी प्रकारके वचन देखनेपर उसने सोचा कि यह बात केवल पढकर छोड देने जैसी नहीं है। इसका अधिकतर अध्ययन करना चाहिये। कहाँ? विद्वानोंके पास जाकर। जिन्होंने इस तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार किया है, ऐसे लोगोंके सन्निध जाकरही यह बात अधिक स्पष्ट करा लेनी चाहिये।

जिस दिन उसने यह निश्चय कर लिया उस दिन शामको वह काशीमें चल पडा। मार्गमें उसने एक प्रासिद्धिक पढा जिसमें कि लिखा था, 'आज शामको दशाश्वमेध घाटपर श्री १०८ मण्डलेश्वर ब्रह्मानंदजीका प्रवचन 'ईश्वरका स्वरूप' इस विषयपर होगा।'

चन्द्रशेखर दशाश्वमेध घाटपर गया। वहाँ उसने देखा कि एक उच्चासनपर पुष्पमालाएँ पहने हुवे ब्रह्मानन्दजी विद्यमान हैं। प्रवचन चल रहा है। श्रोतृवर्ग इस वक्तृत्वकी धारामें बह चला है। वाणीमें लोगोंको आकर्षित करनेकी शक्ति है। स्वामीजी कह रहे हैं—

'और स्वयं भगवान् गीतामें प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'वासुदेवः सर्वम्।' यच्चयावत् जीव ब्रह्मरूपही हैं। सुवर्णके अलंकार बनानेसे सुवर्णके मूल स्वरूपमें जैसा परिवर्तन नहीं होता, वैसेही जीवरूपको प्राप्त होनेसे भी परमात्माके मूलस्वरूपमें कुछ परिवर्तन नहीं हुवा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सारे परमात्माकेही अंश हैं। भगवान् वेदने कहा है, 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। पद्भ्यां शूद्रो अजायत।' परन्तु केवल ये चतुर्वर्णात्मक मनुष्यही नहीं, तो जो जो पदार्थ उत्पन्न हुवे हैं और जो आगे निर्माण होनेवाले हैं, वे सबके सब पुरुषरूप अर्थात् ब्रह्मरूपही हैं। 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।' सारा विश्व ब्रह्मसेही ओतप्रोत है। महात्मा लोग सर्व विश्वको ब्रह्मरूपही देखते हैं। जैसा कि गीतामें कहा है, 'विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।' जो इस विश्वको परमात्माके रूपसे पृथक् देखता है, वह मृत्युको प्राप्त होता है। 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।' आदि आदि।'

चन्द्रशेखर भी इस वक्तृत्वधारासे खुदको बचाकर न रख सका। जब वह प्रवचन सुनता रहा, तबही अपने

मनको समझाता रहा कि ' ये चारों ओर फैले हुये पदार्थ ब्रह्मरूपही हैं। मुझमें और इनमें कोई भेद नहीं है। '

परन्तु प्रवचनके बाद जब वह स्वामीजीके दर्शन करनेकी इच्छासे व्यासपीठके निकट जाता रहा, तब उसकी वह समाधि टूट गई। उसने देखा कि एक मनुष्य स्वामीजीके पास पहुंचा। उसने उन्हें कहा,

' स्वामीजी, आजका आपका प्रवचन सुनकर मन बडा संतुष्ट हुआ। हम जैसे पतितोंको आज आपने ब्रह्मरूप बताया। आप धन्य हैं। क्या आप इस निर्धनकी कुटिया-पर चलकर प्रसाद ग्रहण करेंगे ? '

स्वामीजीकी पडोसमें खडा हुआ एक प्रशस्त शरीरधारी भूदेव बोल उठा, ' कौन है रे तू ? '

' जी मै चमार हूं। '

' तब साले इतना तेरा साहस ? स्वामीजीको अपने घर भोजनको बुलाता है ? '

इसके बाद चार छे भूदेव आगे बढे, और उन्होंने उस ब्रह्मरूप चमारकी जूतोंसे यथासांग षोडशोपचारयुक्त पूजा की। स्वामीजी इस व्यवहारको देखते हुये भी कुछ न बोले। क्यों कि उनके हिसाबसे दूसरेका सर और जूता दोनो ब्रह्मरूप थे।

चन्द्रशेखर भी इस घटनाका साक्षी था। आश्चर्यके धक्केके कारण वह खुदको सम्हल न सका, इसलिये चमारकी सहायताको दौडकर नहीं गया। लेकिन बादमें जब वह होशपर आया तब उसका अन्तःकरण लज्जासे भर आ गया।

' छीः छीः ! यह कैसा व्यवहार है ?' वह सोचता रहा, ' यह तो मनुष्यताको लांछनास्पद है। और वह भी उनके हाथों जिन्होंने अभी कुछ समयके पहले सारे विश्वको ब्रह्ममय बताया ! नहीं। मैने यहाँ आनेमें गलती की। वह स्थान यह नहीं है जहाँ जाकर मै इस सिद्धांतको समझा लेना चाहता हूं। '

परन्तु जिन जिन स्थानोंमें वह जिज्ञासापूर्ण अंतःकरणसे जाता रहा, वहाँ वहाँ ऐसेही प्रकार उसे नजर आगये। उसने देखा कि विश्वको ब्रह्ममय बताना दूसरी बात है, और उसके अनुसार व्यवहार करना दूसरी बात।

आखरी उसे गीताका एक वचन याद आगया जिसमें कि कहा है, ' आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः। ' और उसने निश्चय कर लिया कि मै स्वयंही इस सिद्धान्त पर विचार करूंगा।

बहुत सोचनेपर वह इस निर्णय पर आ पहुंचा कि ' जितने जीव हैं वे सारे ईश्वररूप हैं,' यह बात उस ईश्वरकी उपासना करनेसेही समझमें आ जायगी। इसका अन्य कोई उपाय है नहीं। तब फिर उसे उन तथाकथित-विद्वानोंका व्यवहार और प्रवचन इन दोनोंके असंगतिका पता चला।

यह उपासना किस प्रकार की जाय? उस ईश्वरके विराट स्वरूपकी सेवा करके। सेवा कैसे हो सकती है ? बहोत दिनतक वह विचार करता रहा। आखरी एक वृत्तपत्रने उसकी इस समस्याको सुलझाया।

एक दिन चन्द्रशेखर कुछ चीजें खरीदने बाजार गया। वहाँसे लौटकर जब उसने उन चीजोंको छोडा, तब उसे दिखाई दिया कि जिस कागजमें वे चीजें बंधीं हुई थीं, उसपर मोटे अक्षरोंमें छपा हुवा है, ' सतपुडा पर्वतकी गोदमें बसनेवाली वन्य जातियाँ।' उसने प्रयत्नपूर्वक उस फटे हुये कागजको पढ डाला। किसी वृत्तपत्रका वह एक टुकडा था। और उसमें लिखा हुवा था, कि ये वन्य जातियाँ कई प्रकारके व्याधिओंसे ग्रस्त हैं। सारे अवयवोंकी तुलनामें पेट अत्यधिक बडा होना, यह तो एक स्वाभाविक बात हो गयी है। और भी तपेदिक, संग्रहणी इत्यादि रोगोंके नाम देकर आखरी लेखकने लिखा था कि यदि कोई सज्जन वैद्य नगरोंमें आधे पेट रहनेकी बजाय वहाँ इन अशिक्षित वन्य जातियोंमें आकर वास्तव्य करे, तो एक पत्थरसे दो चिडियाँ मर सकतीं हैं। इनका रोग निवारण और उसका उदरंभरण।' आगेका कागज फटा हुवा था।

अचानक चन्द्रशेखरको पता चला कि ईश्वरके इस दुखी स्वरूपकी सेवाही उसकी यथार्थ-सेवा है। मनुष्यकी शक्ति सीमित है। वह एक जन्ममें बहुत थोडा काम कर सकता है। तब फिर वह थोडा कामही ऐसी जगह किया जाय, जहाँ कि उसकी अतीव आवश्यकता है। अन-

वश्यक सेवा करनेसे शायद् वह परम पिता असन्तुष्ट हो सकता है।

दूसरे दिन वह अपने प्राध्यापकसे जाकर बोला, ' सर, अब मैं आर्टस् छोडकर वैद्यक पढूंगा।'

' अरे लेकिन् क्यों ?'

जब उसने सब कारण बता दिया तब प्राध्यापकने उसका मत परिवर्तित करनेकी भरकस चेष्टा की। वह एम. ए. हो जानेके बाद कितनी अच्छी नौकरी पा सकता है, आदि सुमधुर बातें उन्होंने उसके सामने चित्रित कर दीं। और उन्होंने यह भी कहा कि तब फिर वह द्रव्य-द्वारा उन वन्य जातियोंकी सेवा खूब अच्छी तौरसे कर सकता है।

परन्तु चन्द्रशेखरने जो सोचा था वही किया। लम्बे चार वर्ष बिताकर वह आर्य वैद्यकमें तथा ॲलोपथीमें अच्छी तौरसे उत्तीर्ण हुवा। जितना धन प्राप्त हो सका उतना एकत्रित करके उसने कई औषधियाँ खरीद लीं। कुछ धनी मित्रोंने उसे अधिक सहायता देनेका वचन दिया। और फिर एक अच्छे मुहूर्तपर वह काशीसे सतपुडाके उस जंगलोंकी ओर चल पडा।

वहाँ पहुंचनेपर उसने अनुभव किया कि यह काम जितना समझा गया था उतना सहज नहीं है। इसने सोचा था कि 'मै वहाँ पहुंचनेपर उन लोगोंको दवाइयाँ दे दूंगा, और वे लोग रोगमुक्त हो जायेंगे।'

परन्तु प्रत्यक्ष परिस्थिति कुछ निराली थी। पहिली बात वह उनकी भाषासे बिलकुल अपरिचित था। बडे कष्टसे उसे एक मनुष्य मिला, जिसने बहोत विनन्तिके बाद माध्यम का तथा शिक्षकका काम करनेका मंजूर किया। कुछ पैसोंकी सहायतासे चन्द्रशेखरने रहनेके लिये एक कुटिया बंधवा ली।

परन्तु वास्तवमें कठिनाई तो आगेही थी। वह जिन जातिओंकी सेवा करना चाहता था, उन लोगोंका चन्द्रशेखरकी औषधिओंसे देव-देवता-पिशाच आदिपर अधिक विश्वास था। इस लिये उन्होंने उसकी औषधियाँ लेनेसे इनकार कर दिया। उनकी कल्पना थी कि जब गांवपर किसी पिशाच्चका कोप हो जाता है तब फिर गांवमें हैजा आदि बीमारियाँ चल पडती हैं। और इसकी औषधि है एकाद बकरे या भैंसेको बलि चढाना।

बडी मुष्किलसे उसे एक जीर्ण-ज्वरका रोगी मिला जिसने सारे देव-पिशाच्चादिकके उपचार करनेपरभी नीरोग न होनेके कारण चन्द्रशेखरकी दवाई लेना मंजूर किया। चन्द्रशेखर अब उसके पीछे पडा। उसने उस रोगीके भोजनकी व्यवस्था खुद अपनी कुटिया पर की। और कुछ दिन औषधि लेनेपर जब वह रोगी अच्छा हुवा तब उसके जातवाले आश्चर्य चकित हो उठे। उनके ' देव 'ने कहा था कि पिशाच्च इस मनुष्यको ले जाये बिगर नहीं रहेगा।

फिर रोगियोंकी संख्या बढने लगी। चन्द्रशेखरको अपनी कुटियाका आकार बढाना पडा। बहुत सारे रोगी उसके वहाँही रहना पसंद करते। चन्द्रशेखरको क्षति भी खूब उठानी पडी। केवल औषधियोंपरही वे रोगी समाधान न माना करते। उनके दृष्टिसे इन कॅटु औषधोंसे चन्द्रशेखरकी संदूकमें रखे हुवे द्राक्षासव, गुलकन्द आदि पदार्थही उनके लिये अधिक हितकर थे। और फिर चन्द्रशेखरकी अनुपस्थितिमें शर्विलकका अभिनय करके उन औषधियोंको वे हस्तगत करते।

परन्तु फिर भी धीरे धीरे उन लोगोंका चन्द्रशेखरपरका विश्वास बढते चला। अधिक संख्यामें रोगी वहाँ आकर चन्द्रशेखरकी राह देखा करते। चन्द्रशेखरको रात दिन श्रम करने पडते। परन्तु उसने कष्टोंसे घृणा नहीं की।

प्रतिदिन जब वह उन पीडित लोगोंकी सेवा करा करता तब इस बातका अनुभव करता कि वास्तवमें ये लोग कितने दुखी हैं। और इनकी सेवा करनेकी कितनी आवश्यकता है। नीरोग हो जानेपर जब वे लोग कृतज्ञता-पूर्ण स्वरमें चन्द्रशेखरके उपकार मनाते, तब वह अति-लज्जित होता, और आनन्दित भी। लज्जित इस लिये कि वह इस बातको जानता था कि वे सब ईश्वरके अंश हैं। उनकी सेवा करना ईश्वरकी सेवा करना है। उसमें गर्व मानने लायक कोई बात है नहीं।

और आनन्दित इस लिये कि उसे समभावका साक्षात्कार होने लगा। जब वह किसी रोगीका ऑपरेशन करता तब उसका दुख देखकर स्वयं दुखी हो जाता।

और जब उसे नीरोग होकर प्रसन्न मुद्रासे जाता हुवा देखता, तब फिर वह भी आनन्दित हो जाता। उन लोगोंकी हृत्तन्त्रीकी तारके साथ इसकी तार जुड गई। दोनों तारोंपर एकही तान छिडी जाने लगी।

एक दिन अचानक एक महात्मा वहाँ आ पहुंचे। वे उस प्रान्तके तीर्थोंकी सफर कर रहे थे। किसी व्याधिसे पीडित हो जानेके कारण वे चन्द्रशेखरके पास आगये। चन्द्रशेखरने उनके व्याधिका इलाज किया। एक दिन दोनोंमें बात छिडी।

' क्या वैद्यराज, आप कहेंगे कि ऐसी जगहमें आप क्यों आ बसे ? '

'हाँ, कहूंगा। ईश्वरकी सेवा करनेके लिये।'

' क्या इन गवाँकी सेवा करना ईश्वरसेवा है ? अगर आप चाहते हैं तो मै आपको ले चलूं। ऐसे अच्छे स्थानमें आपको ले जाऊं जहाँ कि साधुसन्तोंकी सब प्रकारकी व्यवस्था हो सकती है। और फिर वहाँ आप ध्यान-धारणा किया करें। इन देहयोंकी सेवा करना तो भैंसा दोहनेके समान है।'

चन्द्रशेखर कुछ थोडासा गंभीर हुवा, और बोला,

' महात्माजी, आप अच्छे हो जानेके बाद यहाँसे तीर्थ-यात्राके लिये चले जाइये। मुझे अपनी इस ईश्वरसेवासे हटानेकी चेष्टा न कीजिये। शायद आप नहीं जानते कि कितने लोगोंके पास मै जाता रहा, और इसी उद्देशसे कि वे मुझे ईश्वरीय-साक्षात्कारका मार्ग बता दें। परन्तु जहाँ जहाँ मै गया, वहाँ वहाँ मेरे हाथको केवल बातोंके सिवा कुछ न लगा। अब मैने अपना मार्ग ढूंढ लिया है। और मै इसी मार्गसे आगे बढ रहा हूं। चाहे वह मार्ग दुरुस्त हो, चाहे गलत हो। फिरभी उसीने मुझे समताके साक्षात्कारकी ओर अग्रेसर किया है। इन्ही लोगोंमें रहकर मै समझने लगा हूं कि 'जीवमात्र ईश्वरका स्वरूप है' इसका अर्थ क्या है। अब आप मेरी इस साधनासे मुझे वंचित न कीजिये।' इतना कहकर चन्द्रशेखर अपने अश्रु छिपाने के लिये वहाँसे तेजीसे निकल गया। महात्माको कुछ कहनेका साहस न हुवा।

प्रायश्चित्त

(ले०– श्री० गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर, औंध)

'गुरुदेव, तब यही आपकी अन्तिम आज्ञा है?' विनम्र सेनापतिने पूछा।

'हाँ। इसके सिवा अन्य कोई चारा नहीं। आर्य-धर्मशास्त्र ऐसे मनुष्यको क्षमा नहीं करता। और एक बात। वह तुम्हारा छोटा भाई है। उसके इस अनुचित वर्तनके लिये तुम्हे दण्ड भुगतना होगा।' वृद्ध तपस्वी कठोर स्वरसे बोले।

'वह क्या?'

'तुम्हे अपने हाथों उसका वध करना होगा।'

'ओह्!!' सेनापतिने अपना मस्तक नीचे झुका लिया।

'बेटा हिमांशु, कोई अन्य उपाय नहीं।' तपस्वीके कठोर स्वरमें अब मृदुता आगयी। वे उठकर सेनापतिके पास चले गये। उनके मस्तकको अपने उन लम्बे शुष्क हाथोंसे स्पर्श करते हुवे वे बोले, 'इतने हतोत्साह हो गये? मै अपने शिष्यसे इतनी दुर्बलताकी अपेक्षा न करता था।'

'परन्तु–'

'परन्तु? परन्तु कैसे? क्या वह देशद्रोही नहीं है? क्या उसने धर्मद्रोह नहीं किया? क्या उसने हमारी इस मातृभूमिको यूनानीओंके हाथ बेचनेकी बात नहीं सोची? और क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये? महाराजा चन्द्रगुप्तकी सेनामें जब तुम सम्मीलित हुवे, तब तुमने प्रतिज्ञा की थी, कि 'मै अपने धर्मकी तथा अपने देशकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध हो रहा हूं। अब कोई भी प्रसंग मेरे मनमें मोह नहीं निर्माण कर सकता।' क्या उस वचनको अब मिथ्या करोगे?'

'नहीं गुरुदेव, नहीं! आप विश्वास कीजिये। आपकी आज्ञाका पालन होगा। मै अपने मनको मोहसे आक्रान्त नहीं होने दूंगा। नहीं। कभी नहीं!' सेनापति गुरुदेवको प्रणाम करते हुवे त्वरासे चल पडे। मानो कि वे किसी भयस्थानसे भाग रहे हैं। तपस्वी उनकी ओर स्नेहमयी मुद्रासे देखते रहे।

\+ + +

वे दिन शान्तिपूर्ण नहीं थे। इस वृद्ध भारतवर्षके राज्याधिकार-सूत्र किसके स्वाधीन रहें, इसका चुनाव हो रहा था। एक बाजूको था चन्द्रगुप्त। वह चन्द्रगुप्त कि जो इस जननीजन्मभूमिका निजी पुत्र था। जो अपनी माताको सर्वतन्त्रस्वतंत्र रखनेके लिये प्राणोंसे बाजी खेल रहा था। और दूसरी ओर था यूनानी सम्राट् सिकन्दर जो सारे संसारका स्वामी बनना चाहता था। उसकी तृष्णाकी कोई सीमा न थी, अन्त न था। उसने यूरप जीत लिया। उसने ईरानपर कब्जा किया। और अब वह अपनी उस विशाल सेनाके साथ भारतवर्ष स्वाधीन करा लेनेके लिये बवंडरके जैसा आ पहुंचा था। सिकन्दर आ रहा है ऐसा सुनतेबराबर राजा लोक अपने अपने राजपाट छोडकर भाग खडे हो जाते थे।

सिकन्दर अपने सेनापति सेल्यूकस निकटारको यहाँ छोडकर स्वयं वापस लौटा। सिकन्दरके इच्छित कार्यको पूर्ण करनेके लिये उसका सेनापति भरकस प्रयत्न कर रहा था। उन दिनोंमें उसके सैन्यविभाग बारम्बार आगे बढनेके प्रयत्न करते रहते थे। और चन्द्रगुप्तकी सेना प्राणपणसे उस सैन्यका मुकाबला कर रही थी।

\+ + +

उस समयका किस्सा है। चन्द्रगुप्तका एक सेनाविभाग पूर्व-पंजाबमें सतलजके किनारे एक छोटेसे गांवकी ओटमें नदीके तटपर छिपकर बैठा है। हिमांशु उसके सेनापति हैं। वह विभाग यूनानी सैन्यकी बाट जोह रहा है। यूनानी सैन्य निकट आतेही वह विभाग उसपर टूट पडेगा। प्रत्येक सैनिक सेनापतिके इशारेकी ओर ध्यान रखते हुवे अपने सारे व्यवहार चला रहा है।

रात्रीका समय। हिमांशु गुरुदेवको मिलकर वापस आ चुके हैं। सारा नदीकिनारा स्वयंपाकके लिये सिलगाई हुई अंगीठियोंसे जगमगा रहा है। सारा वातावरण उत्साहपूर्ण

है। वह ध्वनि जो अनेकोंकि भिन्न भिन्न प्रकारोंसे निर्माण होता है, अपने अस्तित्वसे उस उत्साहको बढ़ा रहा है। शान्त है केवल सेनापतिका आवास।

एक मन्द मन्द जलनेवाले दीपके प्रकाशमें सेनापति अपने आसनपर बैठे हैं। खूब प्रसन्न प्रकृतिका मनुष्य। परन्तु आज कुछ खिन्न है।

क्यों? क्या हुवा है इनको?

इनका इकलौता सौतेला छोटा भाई। माता पिता दिवंगत हो जानेपर वह इन्हींके स्नेहसे पला है। इन्हींके स्नेहका आश्रय पाकर वह बड़ा हो गया है। कितने कष्ट उठाने पड़े हैं इन्हें! एकेक स्मृति चित्रकी भाँति सामने आकर खड़ी हो रही है।

'छोटा भाई चण्डांशु बीमार है। इक्कीस दिन हो गये हैं। बुखार निकलता नहीं। हिमांशुने वे इक्कीस रातें जागकर बिताई हैं। चण्डांशुपर उनका असीम प्रेम है। कितने सुनहरे स्वप्न जिस एकके आधार पर हिमांशु देख चुके हैं, वही आज मृत्युके निमंत्रणकी बाट देखते घड़ियाँ गिन रहा है। हिमांशु उठकर भगवान्‌की मूर्तिके सामने जाकर प्रार्थना करते हैं, 'भगवन्, क्या एकबार कृपा करोगे? मेरी आयु देकर चण्डांशुको उठाओगे?' भगवान्‌ने यह प्रार्थना तो न सुनी, परन्तु चण्डांशु स्वस्थ हो गया।'

और आज वही चण्डांशु–हाँ वही चण्डांशु–शत्रुसे जाकर मिला है!

दूसरी स्मृति।

'चण्डांशुका उपनयन हो चुका है। गुरुदेव उपदेश दे रहे हैं। 'सुना हिमांशु, भगवान् वेदका वचन है, 'मा भ्राता भ्रातरम् द्विक्षन्।' वेदने भाईको भाईसे द्वेष करनेके लिये मना किया है। यह तुम्हारा छोटा भाई है। सौतेला होना यह तो दैवी घटना है। परन्तु फिर भी भाईही तो है! और उसमें तुम इससे बड़े हो। तुम पिताके स्थानमें हो। समझे न?' हिमांशुने चण्डांशुको अपनी गोदमें छिपाकर भारी कण्ठसे कहा, 'हां! सुना गुरुदेव। ऐसा प्रसंग कभी न आने दूंगा कि आपकी अवज्ञा हो।'

और वही चण्डांशु आज मेरे लिये वध्य है! हाँ! वही चण्डांशु।

यूनानी सेनापतिने उसे पकड़कर अपनी पुत्रीका ब्याह उससे करा देनेका आमिष उसके सामने निर्माण किया है। यवनकन्याके नयनकटाक्षोंसे वह घायल हो गया है। और वह भारतीयोंके विरुद्ध यूनानी सेनाको सहाय्य कर रहा है।

आज गुरुदेवने आज्ञा दी है कि मुझे अपने हाथों उसका वध करना होगा! हाँ। मुझे खुदको!'

विचारधाराके इस वेगको हिमांशु सहन न कर सके। वे उठकर खड़े हो गये, और बाहर निकल पड़े। सतलजके पात्रमें एक शिलाखण्ड था, उसपर जाकर वे बैठे रहे। समय बहोत कम है। शायद कलही वह यूनानी सेना निकट आ पहुंचेगी, जिसका कि चण्डांशु सेनानायक बना दिया गया है। कलतक उन्हें निर्णय करनाही चाहिये।

बारबार बन्धुस्नेह उनको हृदयको आप्लवित कर उठता है। उन्हे वह वचन याद आता है जो भाईको भाई का द्वेष करनेसे मना करता है। 'मा भ्राता भ्रातरम् द्विक्षन्।' और उन्होंने चण्डांशुपर पुत्रसे भी अधिक प्रेम किया है।

परन्तु आज सुबहही गुरुदेवने कहा कि अब वह भाई न रहा! अब वह देशद्रोही है। वह इस सुजल सुफल जननी जन्मभूमिको दूसरोंके स्वाधीन कराना चाहता है। इस मातृभूमिपर बसनेवाली उसकी निजी संतान उपायहीन होकर यूनानीयोंका आधिपत्य स्वीकृत करे, इसके लिये वह प्रयत्नशील है। वह मातृद्रोही है! वह स्वजनद्रोही है! वह कृपण है! वह दुष्ट है! भगवान वेदही कहता है। 'अपघ्नन्तो अराव्णः।' कृपण दुष्ट लोगोंका नाश करो।

नहीं। हिमांशु भाईको आश्रय देकर देशद्रोह नहीं करेंगे। वे चण्डांशुके पापका प्रायश्चित्त करेंगे। उस पापका दण्ड वे स्वयं भुगतेंगे। अपने हाथों वे उसका वध करेंगे!

सतलजके पात्रपर बहनेवाली ठंडी हवाने उनके चित्तको सचेत कर दिया। वह वायु उत्तरसे आ रहा है। हिमाचलके शिखरोंपरसे। वहाँ बसकर तपश्चर्या करनेवाले धर्मप्राण तपस्वी लोगोंके आश्रमोंसे होते हुवे वह धर्मनिष्ठाका संदेश ला रहा है। हिमांशु शुद्ध चित्तके पुरुष हैं। उन्होंने

इस संदेशको सुन लिया। और वे उठकर खडे होगये। उनका सीना तन गया। मुट्ठियाँ बंधीं।

'हाँ! अब वह मेरा भाई नहीं। मै अपनी इन दृढ भुजाओंसे उसका वध करूंगा। मै स्वयं! भगवान् वेद कहता है, 'अपघ्नन्तो अराव्णः।' मै स्वयं उसे मारूंगा।'

× × ×

दूसरा दिन निकलनेहीवाला था, कि यूनानी सेनाके आनेका संदेशा आ पहुंचा। संदेशा पाते बराबर हिमांशु उठ पडे। उन्होंने सेनाविभागको सिद्ध होनेकी आज्ञा दी। प्रत्येक घुडसवार अपने घोडेको सजाकर हथियार बांधने लगा। चारों ओर हलचल मची। यद्यपि पर्याप्त गुप्तता रखी गई थी तोभी वह कोलाहल उस नीरव समयमें गांवके प्रत्येक सोते हुवे मनुष्यके कानतक जा पहुंचा। कुछ आशंकापूर्ण अंतःकरणसे गांवके लोग इस सेना-विभागके पास आकर देखने लगे। उन्होंने देखा कि ऊगने वाले सूर्यके प्रकाशसे जिनके शूलोंके अग्र चमचम कर रहे हैं, ऐसे वे चार सौ के करीब घुडसवार अपने घोडोंपर बैठकर उन्हें थाम रहे हैं। दो तीन दिन विश्राम पाकर अब सारा सेनाविभाग उत्साहसे परिपूरित हो उठा है।

और इन सबके अग्रभागमें हैं सेनापति हिमांशु जो खूब अधिक उत्साह दिखा रहे हैं। आज उनके स्वभावके विरुद्ध वे सैन्य विभागमेंसे घूमकर प्रत्येक सैनिककी पूछ-ताछ कर रहे हैं। सारी तैयारी हो चुकी है और अब यह सेनाविभाग निकलेगा, कि अचानक—

सैनिकोंने देखा कि गांवकी ओरसे एक वृद्ध तपस्वी हाथमें लकडी लिये हुवे लम्बे लम्बे कदम डालकर आ रहे हैं।

'एँः! गुरुदेव?' आश्चर्यचकित सेनापतिने पूछा।

'हां! वेही।' सैनिकोंने जवाब दिया।

सेनापति अपने घोडेको दौडाकर उनके निकट पहुंचे। नीचे उतरकर उन्होंने गुरुदेवको प्रणाम किया और पूछा, 'क्यों! आप गुरुदेव?'

'हाँ, मै। क्यों? आश्चर्यचकित क्यों हुवे?'

'परन्तु अभी कैसे? अब तो हम युद्धके लिये चल पडे।'

'तो क्या ब्राह्मण लडना नहीं जानता?'

'गुरुदेव, आपकी सर्वज्ञताके विषयमें मुझे कोई शंका नहीं। परन्तु इस उम्रमें!'

'हाँ! हिमांशु, क्या आज चण्डांशुके साथ तुम्हारा मुकाबला होगा?'

'हाँ गुरुदेव।'

'तो फिर आज तुम मुझे मत रोको। मै स्वयं तुम्हारे साथ युद्धभूमिपर चलूंगा।'

हिमांशुने सोचा कि गुरुदेव आज मेरी परीक्षा देखना चाहते हैं। उन्होंने एक अश्व मंगाया। वृद्ध तपस्वी अश्वपर चढ बैठे। और वह सेनाविभाग चल पडा।

थोडेही समयमें सामनेका क्षितिज धूलिकणोंसे आवृत होगया हुवा दिखाई दिया। उसे देखकर सेनापतिने अपने घोडेकी गति बढाई। सारे घुडसवारोंने उनका अनुकरण किया। बहोत जल्दही दोनो सेनाएँ परस्परके सामने आ पहुंचीं। यूनानीओंकी सेनामें सबके आगे था यूनानी सेना-विभागाधिपति सिरिथिस, और उसके दाँये हाथको एक ऊंचे सफेद अश्वपर बैठा हुवा था चण्डांशु।

तपस्वी अपना अश्व हिमांशुके निकट लाकर बोले, 'देखा हिमांशु?'

कुछ खिन्न स्वरमें उत्तर आया 'हां गुरुदेव।'

'वेदकी आज्ञा तो याद है न?'

'हां याद है। अपघ्नन्तो अराव्णः।'

'तब फिर बढो आगे।'

हिमांशुने अपने सैन्यको इशारा करतेही चार सौ शूल चमचम करते हुवे आगे बढे। यूनानी सेनाभी सुसज्ज थी। उन्होने अपने खड्गोंको अनावृत किया और वे भी चल पडे।

एक क्षणमें दोनो सेनाओंका संयोग हुवा और फिर खूनकी धाराएं बहने लगीं। घोडोंकी हिनहिनाहट, तथा आर्तोंके चीत्कारोंसे सारा वातावरण गूंज उठा।

हिमांशु लडता न था। वह चण्डांशुको ढूंढ रहा था। चण्डांशु नहीं जानता था कि हमारे साथ लडनेवाला सेना विभाग मेरे भाईका है। अचानक दोनो सामने आ पहुंचे। चण्डांशु एकदम थमा और चिल्लाया, 'कौन! भय्या?'

'हाँ!—नहीं, भैय्या नहीं। आर्य-सेनापति हिमांशु।'

'भैय्या। मै तुम्हारे पाँव पडता हूं। कहना बन्द करो। मै सिरिषिससे कहता हूं।'

'नहीं। वह समय पीछे गया है चण्डांशु। वह समय बहोत पीछे गया है। आह! चण्डांशु, अगर तुम यवनोंसे न मिलते तो-'

'हिमांशु!' कठोर स्वरमें किसीने पुकारा। दोनोंने पीछे मुडकर देखा। आहत वृद्ध तपस्वी घोडेपर बैठे हुवे क्रुद्ध मुद्रासे देख रहे हैं। उनके सीनेपर लगे हुवे घावसे खून बह रहा है।

'कौन गुरुदेव?' चण्डांशुने आश्चर्य-भरित स्वरसे पूछा।

'नहीं, देशद्रोही। गुरुदेव नहीं। निःशस्त्र अवस्थामें भी यूनानी बर्बरोंने घायल किया हुवा एक आर्य! हिमांशु!'

'हाँ गुरुदेव!' अचानक हिमांशु अपना खड्ग बढाकर चण्डांशुकी ओर झपटा। चण्डांशु चिल्लाया 'भैय्या, क्या कर रहे हो?'

'कुछ नहीं। युद्ध। यवन सेनानी, बकवा बंद करो। बचना चाहते हो तो शस्त्र निकालो।'

'आपसे?'

'हां। मुझसे।'

'नहीं। मै आपसे नहीं लडूंगा।'

'हिमांशु, अपराधीको दण्ड देते समय नीति-अनीतिका विचार नहीं किया जाता। क्या इस देशद्रोहीसे तुम धर्मयुद्धकी अपेक्षा कर रहे हो?' क्षीण स्वरमें तपस्वी बोले।

'नहीं गुरुदेव।'

दूसरे क्षण हिमांशुका खड्ग चण्डांशुके कण्ठको स्पर्श कर चुका। और उसका मस्तक धूलिमें गिर पडा।

अश्वसे कूदकर हिमांशु चण्डांशुके शवके पास दौडे और उसे लिपटकर मूक शोक करने लगे। अचानक एक धडम् आवाजके साथ तपस्वी अश्वसे नीचे गिर पडे।

'गुरुदेव! यह मै क्या देख रहा हूं?' पागल जैसे हिमांशु चिल्लाये और चण्डांशुका शव छोडकर गुरुदेवके पास आगये। उनका सर उन्होंने अपने पट्टपर धर लिया और जोर जोरसे रोने लगे।

'छीः! रोओ मत हिमांशु बेटा! मै बडा कठोर मनुष्य हूं! तुम्हारी कठोरतम परीक्षा ली मैने। परन्तु तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। अब रोते हो क्यों? धर्मकी मर्यादाका तुमने पालन किया है। मै अब दो चार क्षणका साथी हूं। लेकिन इस अन्तकालमें मृत्युके द्वारमें खडा होकर मै तुम्हारा वह यशोदेह देख रहा हूं, जो अधर्मसे अलिप्त है। जो पवित्र है। जो तेजस्वी है। तुम धन्य हो हिमांशु! पानी चाहिये मुझे! आः!' हिमांशु पानी देखने निकलही रहे थे कि अचानक सांस शान्त हुवा। तपस्वी अब इस लोकमें नहीं रहे।

'नहीं! नहीं!' हिमांशु दोनों मुठियां मुहके पास ले जाकर और आँखें फाडकर पागल जैसे चिल्ला उठे और बोले, 'पूज्य गुरुदेव, अब मै जीवित नहीं रहूंगा। मैने आपकी हत्या की। हाँ। मैनेही! आपको शंका थी कि मै धर्मका पालन नहीं करूंगा। इसलिये आप स्वयं आगये। आपका शान्त निवास-स्थान छोडकर। इस विकराल युद्धभूमिमें। आप मेरे लिये आहत हुवे। मेरे भाईके एक पापका प्रायश्चित्त मैने किया। अब इस पापका भी करूंगा। अवश्य करूंगा! इस धारातीर्थमें स्नान करके!'

हिमांशुने गुरुदेवके चरणको एक बार स्पर्श किया। फिर खूनसे लथपथ होगया हुवा चण्डांशुका मस्तक उठाकर उसे चूमा। और फिर अपना खड्ग संवारकर जो युद्धके कोलाहलमें घुस पडे वे फिरसे दिखाई नहीं दिये।

× × ×

(इस कहानीमेंके ग्राम तथा नाम कल्पित हैं।)

हमारी आकांक्षा और उसकी पूर्ति

(लेखक— श्री० लालचन्द्रजी)

आकांक्षा

हम चाहते हैं कि हम दृढ और स्थिर होकर पुरुषार्थ करें। हम अपने मित्रोंसे समताका बर्ताव करते हुए, शुभ भाव तथा शिव संकल्प धारण करें। हम सदा मुदित मन, सुन्दर भाव रखते हुए तथा सभी सारी जीवचर्या सुनियमित रखते हुए अपना कर्तव्य पालन करें, और तेजस्वी और वर्चस्वी होते हुए दीर्घायु हों। सह ओज तथा बल और शक्तियुक्त होकर हम प्रेमभाजन हों, सबके प्रिय हों, जगतमें प्रेमका वितरण करें तथा सभी प्रेमरत होकर विनय सहित उन्नत होवें। हम यही चाहते हैं कि भगवान् हमें ऐसी चैतन्यशक्ति विपुल मात्रामें दें कि हम मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करें। ऐसे दृढ भाव हमारे अन्दर निरंतर रहें। हम श्रेष्ठोंके संग और विशेषतः सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌केही उपासक होकर श्रेष्ठता धारण करें और हम सत्संगको प्राप्त होकर परम सत्य भगवान्‌के निकटवर्ती होकर सदाचारी रहें, हमारी सबकी यही उत्कट इच्छा रहती है कि हमारे यहां मुद, मोद, प्रमोद सदा बने रहें और समताके भाव स्थिर रहें; और हमारा ध्येय सौन्दर्यका चाव किए हुए पूर्णता प्राप्त करना हो।

क्षमताका विचार

आकांक्षा उत्तम है, किन्तु हमें यह भी सोचना होगा कि हमारी आकांक्षाको पूर्ण करनेकी हममें क्षमता भी है? आकांक्षा पूर्तिके लिए शुद्ध अन्तःकरण, बलवान् शरीर, शक्तियुक्त मन तथा चैतन्य बुद्धि होनी परम आवश्यक है। यह बिना वीर्य रक्षाके संभव नहीं। वीर्यरक्षासेही धारणाशक्ति, ग्रहणशक्ति तथा मननशक्ति बढती है। शरीरमें, रक्तमें वीर्य होनेसेही कांति दीखती है। वीर्यका तत्वही तेज और ओज है। वीर्यके शरीरके नसनसमें होनेसेही शरीरके तंतुओंमें स्फूर्ति तथा बल रहता है। सारे शरीरमें वीर्य रक्तके साथ रहता है, उसीसे शरीरमें स्वस्थता आती है, उत्साह और साहस बढता है। वाणीका माधुर्य, आचारकी शिष्टता, नम्रता, विनय, उदारता, सहनशक्ति, ये सब वीर्यपर निर्भर हैं। जब वीर्य वृद्धिपर होता है तो मुखमंडलपर तेज होता है। परिश्रम करके थकावट नहीं अनुभव होती, पाचनशक्ति अपना काम उचित रीतिसे करती है। जिसकी पाचन-क्रिया ठीक है, वहही नीरोग है, उससे रोग कोसों दूर भागते हैं। ऐसा व्यक्ति स्वस्थ रहता है; उसमें कार्य-क्षमता बहुत होती है, वह सब कार्य लगनसे करता है और सदा प्रसन्न रहता है।

प्रसन्नतापूर्वक सबसे मिलनेसे सुख होता है। परस्पर प्रेम बढता है, स्नेह होता है, आल्हाद तथा उल्लास होता है। वीर्यवान्‌को सब ओरसे यश मिलता है। उसका चित्त उत्साहसे भरा रहता है। उसमें अदम्य साहस होता है, उसमें क्षमता विपुल मात्रामें स्थिर रहती है, वह सबका हित कर सकता है इसलिये सभी उसे चाहते हैं। वीर्यवान्‌के सभी मित्र होना चाहते हैं, सभी उससे स्नेह करते हैं, वह कभीभी कठिनाई उपस्थित होनेपर, कष्ट आने पर निराश नहीं होता। वीर्यवान्‌की शक्ति कभी दबती नहीं, कायरता उसे छूतक सकती नहीं। वह कभीभी सहायता करनेमें आनाकानी नहीं करता। वीर्यवानही दृढप्रतिज्ञ होता है। वीर्यवानकी दीर्घायु होती है। जनताकी मंगल कामना सदा वीर्यवान्‌के साथ हुआ करती है। वृद्धावस्थामें भी उसकी शक्तिमें कभी शिथिलता नहीं होती, वह कभी घबराता नहीं, हताश नहीं होता, उसे कभी भ्रम नहीं होता, उसकी बुद्धि निर्मल रहती है, विवेक जाग्रत रहता है।

आयुकी वृद्धि तभीतक समझनी चाहिये जबतक कि पाचनक्रिया बिना ओषधिसेवनके ठीक ठीक होती रहे। पाचनक्रियासेही भोजनका रस बनकर रक्तादि बननेके पश्चात् वीर्य और ओज बनता है। जबतक पाचन क्रिया ठीक है तभी तक जीवनकी वृद्धि है, तभी तक नवजीवन की प्राप्ति है। वीर्य शरीरके अन्दर रमा हुआ होनेसेही

पाचन क्रिया ठीक रहती है और ठीक पाचन क्रिया होनेसे वीर्य अधिक बढता है और मनुष्य अधिक वर्चस्वी और ओजस्वी होता है।

प्रभावशाली जीवन शरीरके अन्दर वीर्यकी मात्राके अनुकूलही होता है, शुद्धवीर्य जब रक्तमें मिला हुआ सारे शरीरमें घूमता है तब मुखमंडल तेजस्वी दीखता है, मनुष्य का प्रभाव उसकी कान्तिकी मात्राके अनुसारही जनता पर पडता है। नेताके लिए तो शुद्धवीर्य, शुद्ध विचार, शुद्ध संकल्प, शुद्ध व्यवहार और शुद्ध आचरणका होना अत्यंत आवश्यक है। नेताका पवित्र आचरण, उसका ओजही सबपर उसका प्रभाव पडनेका कारण होता है। प्रभावशाली जीवन बनाना सबका ध्येय होना चाहिये। हम क्यों यशस्वी न हों? हमारा बल हमारी शक्तिका अवश्य सदुपयोग होना चाहिये। शुद्धवीर्य अन्दर रहते हुए शक्तियोंका दुरुपयोग नहीं होता। संयम सहजमें अनायासही सफल होता है और वीर्यवान् विजयी होता है।

मनुष्यकी आयु वीर्यरक्षा पर निर्भर है। वीर्य शरीरमें सुरक्षित रहे तो कभी क्षय और यक्ष्मा नहीं हो सकते। क्षयरोग प्रायः वीर्य नाशके कारणही हुआ करता है। वीर्य शुद्ध हो और उसकी गति ऊपरकी ओर हो तो दीर्घायु निश्चित है। ऐसे व्यक्तियोंका परिवार निश्चित स्वर्ग है। उसमें सभी प्रसन्न रहते हैं और अपना कर्तव्य पालन करते हैं। चैतन्यता, स्थिरता, सावधानता और प्रसन्नता सदा कर्तव्य पालनसे ही वृद्धिको प्राप्त होती है। वे दिव्यगुण वीर्यसे निकटतम संबन्ध रखते हैं। वीर्यकी स्थिरतामें ही चैतन्यता निरंतर विकसित होती है और मनुष्यका विवेक सदा जाग्रत रहता है। विवेकी पुरुष सत्यनिष्ठ और प्रेमपूर्ण होता है। उसीका हृदय कारुण्यरसपूर्ण होता है। उसीमें सहानुभूति की इच्छा प्रबल होती है। जहां परस्पर सहानुभूति है, आपसका आदर और विनयकी जीवनचर्या है उस आनन्दमय वातावरणमें दीर्घायु अवश्य होती है, क्योंकि वहां जीवनका ह्रास नहीं होने पाता। ऐसे गृहस्थके सभी कार्य नियमसे, सभी वस्तु उचित स्थानपर, सभी व्यवहार समयानुकूल होते हैं, जिनका परिणाम चित्तकी प्रसन्नता होता है, और नित्य प्रसन्न रहनेसे वृद्धावस्था सुखदायी होती है और आयु लंबी होती है। वीर्यवान्‌ही सदा प्रसन्न चित्त रहनेके कारण संपद, वैभव यशसम्पन्न होता हुआ दीर्घायु तक जीने का इच्छुक होता है। यही आर्य जीवित है।

जिसके शरीरमें शुद्ध वीर्य है उस मनुष्यको जगत मंगलमय दीखता है। अपना भाग्य सदा उन्नतही दीखता है। वह अपनी दैवी वृत्तियोंकी प्रबलतासे आसुरी वृत्तियों पर विजयी होता है, जीवन संग्राममें विजयी होनेसे उसे जीवन संगीतमय अनुभव होता है। उसे पता लगता है कि वह आत्मभरी इस विश्वमयी पर निर्भय विचर सकता है। महात्मा बुद्ध, श्रीशंकराचार्य, श्री स्वामी दयानन्द ऐसेही विजयी महानुभाव हुए हैं जिनके जीवनसंगीतकी ध्वनि आज भी गूंज रही है। वे अमर हैं, उनका यश सदा उज्ज्वल रहेगा। उनकी कीर्ति सदा गाई जायगी। उनके शत्रुतक उनसे प्रभावित हुए हैं। श्रीचैतन्य देव, परा भक्तिके स्वरूप, भी ऐसेही प्रभावशाली व्यक्ति थे।

वीर्यही मनुष्यकी गति है। मनुष्यका मननशील होना सब वीर्यपर निर्भर है। मनुष्य मतिमान तथा गतिमान शुद्ध वीर्यके कारणही होता है।

जिन लोगोंमें वीर्यकी कमी होने लगती है उनमें आलस्य और प्रमाद बढने लगता है। जो उद्यमी है वही बलवान है। उद्यम तथा बल, वीर्यके कारणही होते हैं। बलवान सदा संयमी होता है। उसकी रुचि संयम द्वारा बल बढानेमें हुआ करती है। वीर्यवान्‌ही संयमी है और संयममेंही वीर्यमें शुद्धि तथा वृद्धि होती है।

पवित्र स्निग्ध पदार्थ खानेसे शुद्ध गोदुग्ध (गौका दूध उबालकर) अथवा तुरन्तका दुहा हुआ पर्याप्त मात्रामें पीनेसे तथा शुद्ध अन्न ठीकमात्रामें लेनेसे शरीर सदा शक्तियुक्त बना रहता है और श्रम करनेसे उसका जी नहीं उकताता, सदा चित्त स्थिर रहता है। वीर्यवानके अन्दर विचार शक्ति तथा श्रम करनेका उत्साह वृद्धावस्था तक बना रहता है।

वीर्यरक्षाके लिए भोजन अत्यन्त सात्त्विकही लेना चाहिये। सात्त्विक भोजनसे शुद्धवीर्य बनता है और मन पवित्र होता है। मनुष्यकी स्मृति स्थिर होती है। स्थिर स्मृतिसे मनुष्यमें भूल नहीं रहती। भूल न होनेसे सब कार्य

चतुरतासे, दक्षतासे होता है और परिणामतः जीवन सुन्दर और सुगन्धित होता है, सुरक्षित जीवनसे सारे समाजमें सौन्दर्यका विकास होता है। सौन्दर्य और सदाचार स्वस्थ मनमें विकसित होता है। सात्विक भोजन सत्व युक्त होता है। उससे नवीन सत्व मिलता है। और नित नयी मनन शक्ति तथा जीवन शक्ति बढती है। जीवनस्रोतका भगवानसे अटल संबंध रखनेकी रुचि होती है। प्रभु-सहवासमें नवजीवन, नव उत्साह नव साहस मिलता है। प्रभु पूर्ण शक्तिमान हैं। उपासकका ध्येय भी पूर्णता हो जाता है, जो सत्यं शिवं सुन्दरं प्रभुकी कृपासे पूर्ण होता है।

जब मनुष्यका चित्त स्थिर होता है, उसकी स्मृति अचल होती है तो ऐसे पुरुषसे महान कार्य भी सुगमतासे हो सकते हैं और मनुष्य प्रगतिशील रहता है। उसकी ऊर्ध्वगति होती है। उसके चित्तमें भ्रान्ति नहीं होती। ज्ञान और श्रेष्ठता शुद्ध वीर्यके परिणाम हैं। जिसके अन्दर शुद्ध वीर्य काम कर रहा है उसके इन्द्रियों तथा मन बुद्धि आदिके सारे व्यापार युक्त रीति नीतिसे हुवा करते हैं।

महत्वाकांक्षा बहुत उत्तम है पर उसकी पूर्तिके लिए बल और शक्ति वीर्यसेही प्राप्त हो सकती है। इन्द्रिय-निग्रहकी शक्ति भी ब्रह्मचर्य धारण करनेसे, योग्य रीतिसे वीर्य रक्षा करनेसेही प्राप्त होती है। न्यायकी, मानमर्यादाकी सद्भावनाएँ भी वीर्यरक्षा परही निर्भर हैं। वीर्यहीन लोगही कठोर तथा क्रोधी होते हैं। वीर्यवान सदा सहनशील और धैर्यवान होते हैं। क्षमा, वीर्यवान्काही गुप्त धन है। जितने दैवी भाव हैं वे सब शुद्ध वीर्यपरही निर्भर हैं। महत्वाकांक्षाकी पूर्ति वीर्य, तेज और ओजसेही होती है। ओजस्वी पुरुष सदा प्रभावशाली होता है इस-लिए सफल होता है और उसकी आकांक्षा पूरी होती है और सद्भावना स्थिर रहती है।

नैतिक सुधार

सद्भावनासे युक्त व्यक्ति जब परस्परकी हितकी इच्छासे अथवा समाज या जातिहितके निमित्त निजी हितोंको मर्यादामें रखते हैं तो सर्वहित फलता फूलता है वही नैतिक जीवन है। नैतिक जीवनका आधार संयम है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नैतिक जीवनके स्तम्भ हैं। परिवार समाज वा जातिकी स्थिति तक डांवाडोल हो जाती है यदि ये जीवनचर्यामें धारण न किये जायँ। यदि एक स्तम्भ भी कमजोर पडा तो स्थिति बिगडने लगती है।

यदि व्यक्ति एक दूसरेके यशपर आघात करे और जो बुरा काम कोई व्यक्ति किसीके देखतेमें करनेमें लज्जा माने अथवा भयके कारण न कर सके, वही काम छिपकर चोरीसे करना चतुराई समझी जाय और फिर भी समाजमें ऐसे जनोंको अपने आपको भले लोग कहलानेमें तनिक भी हिचकिचाहट न हो तो ऐसी अवस्थामें सदाचार नहीं पनपता और व्यक्तिके पतनके साथ समाजका भी पतन होता है, ऐसे लोगोंमें परस्पर का विश्वास कैसे स्थिर रह सकता है? ऐसे लोगोंमें आपसमें एक दूसरेपर संदेह होता है। विश्वास के अभावमें नैतिक जीवन कठिन हो जाता है और समाजकी प्रगति रुक जाती है। सद्भावही नैतिक जीवनकी भित्ति है।

स्वार्थ अथवा निजीहितोंका सर्वहितके लिए मर्यादा में रखनाही नैतिक जीवन है। जातिकी मर्यादा, समाजकी मर्यादा, देशकी मर्यादा, परिवारकी मर्यादा, धर्मकी मर्यादा, ये सब मर्यादाएं नैतिक जीवनके लिए आवश्यक हैं। संसारसे सत्यही यदि उठ जाय तो जीवन तक संकटमें पड जाय। आपसका व्यवहार, बर्ताव, व्यापार, सभी में कठिनाई आजाय। जहां स्वार्थ पर संयम ढीला हुआ कि साथही नैतिक जीवनका भी ह्रास हुआ और परिणाम होता है परिवार, समाज अथवा जाति वा देशका पतन। आचरणकी पवित्रताही नैतिक जीवनका दूसरा नाम है।

हमारी परखही इसमें है कि हम एक दूसरेसे कैसे वर्तते हैं। क्या हम लोगोंसे भय खाते हैं। अथवा लोग हमसे भयभीत रहते है? जहां भय है, जहां लोग त्रसित से रहते हैं, वहां नैतिक जीवन नहीं।

जहां प्रत्येक व्यक्तिके विकासकी संभावना न हो, जहां माता पिता अथवा गुरुजनोंका नियंत्रण अधिक हो, बात बातमें निषेधात्मक शिक्षाएं मौखिकही मिलती रहती

हों, वहां त्रासके मारे बालक बढ़ते नहीं; उनमें झूट छल कपट आदि दुर्व्यवहार फैलते हैं। और बालकोंकी बढ़ती रुक जाती है। हमें यदि सुन्दर बलवान तथा सहृदय संतान बनाना है तो उन्हें स्नेह, प्रेम तथा कोमल भावोंके अमृतसे सींचना होगा, न कि भयकी गरम लपटोंसे उनके हृदयोंको झुलसाना। घर विकासका स्थान है न कि केवल शासनालय; और वास्तवमें शासन भी तो प्रेमयुक्तही हितकर है। न्याय भी दोषीके हितके लिये होता है न कि उसके विनाशके लिए। बालक अपने माता पिता तथा बड़ोंको अपने स्नेही मित्र समझें न कि शासक। ऐसा यत्न करना चाहिये कि बालकोंके अन्दर संकोच किंचित भी न रहे, उनका हृदय खुले, वे निर्भय हों, निष्कपट हों और सब बातें स्पष्ट स्पष्ट अपने पिता अथवा माताले कह दें। माता, पितासे कोमल होती है इसलिए बालक माताका अधिक आदर करते हैं। क्या पिता इस रहस्यको समझेंगे, और बालकोंमें नैतिक साहस बढानेमें सहायक होंगे? यदि बालकोंसे ममता और मोहके स्थान स्नेह और प्रेम किया जाय जोकि उनके हृदयको छू सके तो बालक अवश्य सदाचारी, सरल, निष्कपट, सच्चे और निडर होंगे और उनकी बढ़तीकी गति तीव्र होगी, वे साहसी उत्साही और वीर होंगे।

नैतिक जीवनपर सामाजिक जीवन निर्भर है। यदि नैतिक उन्नति किसी समाजमें अच्छी गतिसे हो रही है तो हम ऐसे समाजको उन्नत समाज कहेंगे। वे लोग भूलमें हैं जो केवल बाहरी शिष्टाचारको ही सामाजिक उन्नति समझा करते हैं। दिखावेके लिए भी शिष्टाचार हो सकता है और अन्दर छल कपटका बनाव रह सकता है। व्यक्तिगत जीवनकी पवित्रता ही सामाजिक जीवनका मूल है।

व्यक्ति, परिवार और समाज, इनमें व्यक्तिकी अबाध उन्नतिके लिये, उसके निरंतर विकास के लिए परिवारही, घरही, सबसे अधिक ध्यान देनेका स्थान है। गृहस्थोंमें मिलकर बैठने, उपासना करने, भोजन करने, इकट्ठे सैर करने जाने आदिके अवसर बढाने चाहिये ताकि परस्पर संकोच घटे और सरलता बढ़े। इसी प्रकार सामाजिक उन्नतिके लिये परिवारोंका परस्पर मिलना आवश्यक है। हम सुहृद भावसे मिलें, बालक बालिकाएं आपसमें खेलें, अवसर पाकर युवा तथा प्रौढ लोग भी आपसमें मिलकर खेलें तथा बडी संख्यामें सम्मीलित उपासना तथा संगीत उत्सव आदिमें इकट्ठे हों, मिलकर त्योहार मनाएं तो कितना आनंद हों, आपसमें कैसी स्थाई एकता हो। हमें परस्पर मिलनेके अवसर बढाने चाहिये। एक दूसरे परिवारको भली प्रकार सद्भावसे जाननेकी इच्छा रखनी चाहिये। आपसमें परिचय बढनेसे संकोच दूर होगा, संदेह नहीं होगा और परस्पर हितकी कामना बढेगी, लोग एक दूसरेको ठीक ठीक जानेंगे, अपरिचितसे न रहेंगे। एक साथ रहनेवाले परिवार भी आपसमें परिचित न हों, यह कैसी आश्चर्यकी बात है? मिलनेसे समतासे भाव, स्नेह और प्रेम बढेगा। एक दूसरेको ठीक ठीक जाननेसे सहानुभूति होगी। सहानुभूतिसेही नैतिक जीवन आरंभ होता है।

जो बात मुझे अच्छी नहीं लगती, वह मैं दूसरेको क्यों कहूं? मेरा अपयश यदि अन्य व्यक्ति करे तो मुझे बुरा लगता है इससे मैं दुसरे का अपयश क्यों करूं; उसकी निन्दा क्यों करूं? परस्परके व्यक्तिगत आक्षेप एक भारी सामाजिक न्यूनता है, यदि एक दोषी दूसरे दोषीपर आक्षेप करता है तो आपसमें दोषोंकी धूल उड़ती है और इससे सभी की हानि है। आपसके संदेह, संशय तथा अविश्वास परस्पर वैमनस्य बढाकर ह्रास तथा विनाशकी गति तीव्र करते हैं।

सामाजिक उन्नतिका मूलमंत्र सहृदयता है। जो बात मुझे नहीं भाती वह मैं अपने भाई बहिनके प्रति क्यों करूं? मर्यादाका जीवनही नैतिक जीवन है।

आकांक्षाकी पूर्ति

नैतिक जीवनमें सभीकी आकांक्षाओंकी पूर्तिकी संभावना है। सहृदय मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष अथवा घृणा नहीं किया करते और परिणामतः सबका जीवन यशमय होता है। आदर, सन्मान और दया, अथवा आज्ञापालन, प्रेम और उदारता, येही यज्ञके मुख्य अंग हैं। जिस समाजमें व्यक्तियोंमें यशोभावना प्रबल होती है वहां निजी हित निजी अधिकार सीमित रहते हैं और स्वार्थ बढने नहीं पाता। जीवन सबके संयत रहते हैं और सभी उन्नति कर सकते हैं। सभी में महत्वाकांक्षा होती है और उसकी पूर्तिमें सहायता मिलती है।

भगवद्गीता और वेदगीता

(ले॰— श्री॰ पं॰ **जगन्नाथशास्त्री, न्यायभूषण, ज्योतिषी**, प्रिन्सिपल, महिला संस्कृत कालेज, लेय्या)

तुलना– गीतामें वेदोंके त्रिगुणात्मक सकाम कर्मोंके अनुसार चलनेवालेको संसारमें फंसनेवाला, और निर्द्वन्द्व, ब्रह्ममें लीन रहनेवालेको मुक्त कहा है। वेदमें भी तीनों गुण पुरुषको संसारमें बन्धनके कारण बताये हैं। जो उन गुणोंके वास्तविक स्वरूपको जानकर उनसे पृथक् रहता है और ब्रह्मका चिन्तन करता है, वह मुक्त हो जाता है।

(४६) यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥
(भगवद्गीताऽध्याय २, श्लोक ४६)

अर्थ– (सर्वतः) चारों ओरसे (संप्लुतोदके) नानाप्रकारकी झरनाओं तथा वर्षाकी धाराओंसे भरे हुए (उदपाने) कूप, तडाग, बावली आदि छोटे छोटे जलाशयोंमें (यावान्) जितने जलके ग्रहण की (अर्थः) स्नान, पानादिके प्रयोजन निमित्त आवश्यकता होती है, (तावान्) उतने ही जलका ग्रहण किया जाता है, संपूर्ण जलका ग्रहण नहीं किया जाता। इसी प्रकार (विजानतः) परम तत्त्वके जाननेकी इच्छा करनेवाले (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणके लिये भी अपने ब्रह्मज्ञानकी परिपूर्णताके लिये (सर्वेषु वेदेषु) चारों वेदोंमेंसे केवल ब्रह्मज्ञानको सम्पादन करनेवाले भागका ही प्रयोजन होता है, सम्पूर्ण वेदका नहीं।

अथवा इसका अर्थ अन्य प्रकार भी है—

यावानर्थ इति· जैसे वर्षाकालमें सर्व जलके बाढ आनेसे छोटी छोटी बावली आदि अपने विस्तारके अनुसार जलको ग्रहण करके भर जाती हैं, चाहे प्रलयकारी वृष्टि क्यों न हो यह कूपादि उतने जलसे भर जाएंगे जितना उनका पेट होगा। शेष जलसे कूपादि को कोई लाभ नहीं होता। इसी प्रकार (तावान्–) जिस बुद्धिमान् चतुर ब्राह्मणको अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ प्राणीको चारों वेदोंसे जितने उपदेशोंकी अवश्यकता है, उतना ही ग्रहण करे। अधिक ग्रहणसे उसे कुछ भी लाभ न होगा। एक टीकाकारने इस श्लोकका अर्थ निम्नलिखित प्रकार भी किया है—

(यावान्–) स्नानपानादिके प्रयोजन जितने छोटे छोटे उपादान से निकलते हैं, वे सबके सब एक ही स्थानपर बहुत बडे समुद्रके समान महान् जल-राशिके अन्तर्गत हैं। तात्पर्य यह है कि स्वर्गादिके अथवा नानाप्रकारके इतर लौकिक विषयोंके सुख जो भिन्न भिन्न कर्मोंके करनेसे प्राप्त होते हैं, वे सबके सब ब्रह्मानन्दके सुखके अन्तर्गत हैं। इसलिये भिन्न भिन्न कर्मोंको त्याग कर एक ही ठौर केवल ब्रह्मानन्द-सुखकी प्राप्तिका यत्न करना चाहिये। (प्रमाणम्) **एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।** उप॰) इस ब्रह्मानन्दके एक छोटे अंशमें इस संपूर्ण ब्रह्मांडके जीवोंका आनन्द खप जाता है, क्योंकि अन्य जितने आनन्द हैं वे सब उसी ब्रह्मानन्दके बिम्ब हैं॥ ४६॥

वेदगीता (मंत्रः)

वेदे॑न रू॒पे व्य॑पिबत् सुतासु॒तौ प्र॒जाप॑तिः।
ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ᳪ शु॒क्रमन्ध॑स॒
इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑॥
(वा॰ य॰ १९।७८)

अर्थ– (प्रजापतिः) जीवात्मा (ऋतेन) सत्यस्वरूप (वेदेन) ऋगादि चारों वेदोंसे (सुताऽसुतौ) श्रुती भगवतीसे प्रेरणा किया हुआ ब्रह्मज्ञानात्मक धर्म तथा निषेध किया हुआ अधर्म इन दोनोंको (व्यपिबत्) विशेष करके पान करता है अर्थात् सकाम धर्मसे क्या क्या फल मिलता है यह जानता है और वेदज्ञानसेही (इन्द्रस्य) आत्माके (सत्यम्) सत्य धर्मके आचरणको (अन्धसः) तथा ज्ञानात्मक अन्नका (विपानम्) विशेष करके ग्रहण करनेवाले (शुक्रम्) ब्रह्मात्मक बलको तथा (इन्द्रियम्) अन्तरिन्द्रियसम्बन्धि समग्र इन्द्रियशक्तिको (इदम्) इस (मधु) मधुरता गुणसे युक्त (पयः) पान करनेयोग्य (अमृतम्) अमृतपद अर्थात् मुक्तिको (व्यपिबत्) ग्रहण कर लेता है।

तुलना– गीतामें कार्य चलाने मात्र जलका दृष्टान्त देकर वेदसे ब्रह्मज्ञान मात्रका ग्रहण करना, कहा है। वेदमें भी धर्माधर्मका विचार वेदसेही जाना जा सकता है। वेदसे ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादक श्रुतियोंके विचारसेही मुक्ति बताई है॥

(४७) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥
(भगवद्गीताऽध्याय २, श्लो. ४७)

अर्थ-हे अर्जुन ! (ते) तेरा (अधिकारः) अधिकार अर्थात् योग्यता (कर्मणि) कर्मके ही करनेमें है। परन्तु (फलेषु) उसके फलग्रहण करनेमें (कदाचन) कभी भी तेरा अधिकार (मा) नहीं है। इसलिये तू (कर्मफलहेतुः) कर्मफलका कारण (मा +अस्तु) मत हो क्योंकि फलकी इच्छा होनेहींसे प्राणी कर्मफल भोगनेका कारण होता है, अर्थात् अपने हाथोंसे अपने गलेमें छुरी लगाता है और कर्मबन्धनमें पड जाता है जिससे कल्पान्त-पर्यंत आवागमनके दुःखसे दुःखी होता रहता है। फिर (अकर्मणि) नित्यनैमित्तिक कर्मके न करनेमें भी (ते) तेरी (संगः) आसक्ति (मा अस्तु) मत होवें, अर्थात् कर्म तो तू सब कर, पर उसके फलकी इच्छा मत कर और निषिद्ध कर्म भी मत कर ॥ ४८ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(यजु. ४०।२)

अर्थ- मनुष्य (इह) इस जगत्में (कर्माणि) नित्यनैमित्तिक निष्काम कर्मोंको (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतं समाः) सौवर्ष अर्थात् अपनी आयु की समाप्तितक (जिजीविषेत्) जीनेकी इच्छा करे। (एवम्) इस प्रकार मुक्तिके लिये निष्काम कर्मोंके करनेसे (त्वयि) निष्काम कर्मवाले तुझ मनुष्यमें (कर्म) नित्यनैमित्तिक स्वाभाविक कर्म-धर्म (न लिप्यते) लिपायमान नहीं होता अर्थात् तुझमें कर्मजन्य बन्धन कभी न होगा। (इतः) इस प्रकारसे (अन्यथा) भिन्न प्रकार (नास्ति) नहीं है।

तुलना- गीतामें कहा है कि प्रत्येक पुरुषको नित्यनैमित्तिक कर्म जीवनतक अवश्यमेव करने चाहियें; परन्तु निष्काम कर्म अर्थात् भगवदर्पण कर्म करता रहे, कर्मका परित्याग मत करे। वेदमें भी आयुःपर्यन्त कर्मफलकी इच्छा न रखता हुआ, कर्म करता जावे। फलकी इच्छा न रखे । कर्मफलका परित्याग करके भगवदर्पण कर्म करना हरप्रकार कल्याणके करनेवाला है, नकि कर्मका त्याग शुभफलके देनेवाला है ऐसा कहा है।

जैसे महाभारतमें भी कहा है—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥१॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसः विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥ २ ॥

अर्थ- इस सृष्टिमें जड पदार्थोंमेंसे चैतन्य अर्थात् प्राणवाले श्रेष्ठ हैं। उन प्राणियोंमें बुद्धिसे जीवन निबाहनेवाले श्रेष्ठ हैं। बुद्धिवालोंमें भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ कहे गये हैं। ब्राह्मणोंमें भी विद्वान् श्रेष्ठ माने जाते हैं। विद्वानोंमें भी कृतबुद्धि=निश्चयात्मिका बुद्धिवाले श्रेष्ठ हैं । निश्चयात्मिका बुद्धिवालोंमें भी (कर्तारः) नित्यनैमित्तिक कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं। नित्यनैमित्तिक कर्म करनेवालोंमें भी (ब्रह्मवादिनः) कर्मके फलोंको भगवदर्पण करके केवल भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति करनेवाले श्रेष्ठ हैं।

सकाम कर्म करनेवालोंकी मनुजीने हानि बताई है, जैसे-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते ॥
(मनु. अध्या. २, श्लो. ९४)

अर्थ- कर्मोंके फल स्वर्ग तथा सुन्दर रमणी आदि नाना-प्रकारके भोग हैं। उन कामनाओंके भोगनेसे कभी तृप्ति नहीं होती । जैसे अग्निमें घृत डालनेसे अग्निकी ज्वाला फिर फिर बढती ही है।

तथा च- " कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्रतत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ "
(मुण्ड. ३।२।२)

अर्थ- विषयोंकी कामना करनेवाला जिन जिन कामनाओंको चाहता है अथवा करता है, उन्हीं उन्हीं कामनाओंके अनुसार वहां वहां जाकर जन्म लेता है। परन्तु जो सर्व प्रकारसे आप्तकाम है अर्थात् जिसकी सारी कामनाएं भगवत्स्वरूपमें पूरी हो चुकी हैं, तथा जो सर्व प्रकार कृतकृत्य है, उसकी सारी कामनाएं यहां ही नष्ट हो जाती हैं। इसलिये श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनको निष्काम कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं।

(४८) योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥
(भग. अ. २, श्लो. ४८)

अर्थ- हे (धनञ्जय) हे अर्जुन ! (योगस्थः) सुख-दुःखमें समान केवल ब्रह्ममें स्थिति रखनेवाला पाप-कर्मसे पृथक् होता हुआ तू (संगम्) कर्मके संगको अर्थात् फलकी तृष्णाको तथा कर्माभिमानको (त्यक्त्वा) छोडकर (सिद्ध्यसिद्धयोः) कामनाके फलकी प्राप्ति और कामनाके फलकी अप्राप्तिमें (समः) एक समान अर्थात् हर्ष और विषादसे शून्य (भूत्वा) होकर (कर्माणि) स्ववर्णानुसार बतलाए हुए दुःखात्मक अथवा सुखात्मक, कठिन अथवा कोमल नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको (कुरु) कर। क्योंकि (समत्वम्) सुख, दुःख, लाभ और हानिमें एक-जैसा रहनाही (योगः) योग (उच्यते) कहा गया है। यद्वा (समत्वम्) [निर्दोषं हि समं ब्रह्म] ब्रह्म दोषरहित और सबमें समान रूप है। समानता रखनेवालेका नाम समत्व है, वही ब्रह्मज्ञानसे पाया जावे उसे योग कहते हैं, अतः (योगस्थः) कहा है ॥ ४८ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ (ऋ. १०।७१।२)

अर्थ— (यत्र) जिस समय (धीराः) बुद्धिमान् विवेकी पुरुष (तितउना सक्तुमिव) शूर्पसे धान्यविशेषको (पुनन्तः) पवित्र करते हुए अथवा साफ करते हुए अर्थात् खराब धान्यको पृथक् करते हुए पुरुषोंकी तरह निष्कामकर्मद्वारा कर्मोंके फलकी इच्छाको दूर करते हुए (मनसा) शुद्धसंकल्पसे या शुद्ध बुद्धिसे (वाचम्) ज्ञानात्मक कर्मों और वचनोंको (अक्रत) करते हैं। (अत्र) इस समयमें (सखायः) शास्त्रप्रतिपादित समताज्ञानको विषय रखते हुए, (सख्यानि) शास्त्रप्रतिपादित समतामें होनेवाले ज्ञानको अथवा कर्मोंको (जानते) जानते हैं। अथवा (सखायः) वाणीसे आपसमें मित्र बने हुए सबके साथ समताको प्राप्त करते हुए, (सख्यानि) समतावाक्यसे मिली हुई उन्नतियोंको पाते हैं। इसलिए समतामें रहनेवाले (एषाम्) इन पुरुषोंकी (वाचि) वाणीकी शक्तिमें (भद्रा) कल्याणस्वरूप (लक्ष्मीः) सम्पत् (अधि निहिता) स्थिर रहती है ॥ २ ॥

तुलना— गीतामें- संगका परित्याग, सबमें समता रखनी, कार्यसिद्धि और असिद्धिमें हर्षविषादका परित्याग, यही ब्रह्मप्राप्तिके लक्षण हैं। वेदमंत्रमें— बुरे कर्मोंका त्याग, निष्काम शुभ कर्मोंका करना, शुद्ध मनसे ज्ञानलब्धि करना, सबके साथ मित्रता, समताका धारण करनाही मोक्षसम्प्रातिका साधन है ॥

(४९) दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय[1]।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ४९)

अर्थ—(धनञ्जय) हे शत्रुओंको जीतकर धन एकत्र करनेवाले अर्जुन ! (हि) उस कारण (बुद्धियोगात्) ज्ञानयोगद्वारा किये निष्काम कर्मसे (कर्म) सकाम कर्म (दूरेण) बहुतही दूर होनेके कारण (अवरम्) अत्यन्तही निष्कृष्ट है। इसलिये तू (बुद्धौ) बुद्धियोगकी (शरणम्) शरणको (अन्विच्छ) जा अर्थात् निष्काम कर्मोंका सम्पादन कर। क्योंकि (फलहेतवः) कर्मसे उत्पन्न होनेवाले सुख-सन्तान-सुख, धनसुखादि फलोंके चाहनेवाले (कृपणाः) अत्यन्त कृपण अर्थात् दीन, दुःखी, और नीच होते है।

वेदगीता (मंत्रः)

यस्तित्याज[2] सचिविदं[3] सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥
(ऋ. १०।७१।६, ऐ. आ. ३.१०; तै. आ. १,३,१; २,१५,१

---

१ धनञ्जय अर्जुन अपना नाम आप रक्खा था। महाभा. पर्व. ४ अध्या. ४२ श्लो. (१३) "सर्वान् जनपदान् जित्वा वित्तमाश्रित्य केवलम्। मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम्" **अर्थ**- सब देशोंको जीतकर केवल धनका आश्रय करके धनके मध्य स्थिर रहता हूं, इसी कारण लोग मुझे धनञ्जय कहते हैं।

२ तित्याज=त्यजते लेटि "अपस्पृधेथामानृचुः—" इत्यादिना निपातितः।

३ सचिविदम्=सचिशब्दः सखिवाचि, सखिविदमित्यर्थः। जो वेद-सम्प्रदायके विनाशके निवारक होनेसे, वेदके प्रत्युपकारी होनेसे, वैसे उपकार करनेवाले वेदाध्येताको जो जानता है, वह सचिविद् है।

अर्थ— (यः) जो पुरुष (सचिविदम्) समग्र संसारी जीवोंके सखास्वरूप वेदके स्वाध्याय करनेवाले (सखायम्) निष्काम कर्म करनेवाले, सुखदुःखादि द्वन्द्वोंमें एकरस रहनेवाले ज्ञानी पुरुषको अथवा निष्काम कर्म बतानेवाले सखास्वरूप वेदको (तित्याज) छोड देता है अर्थात् निष्काम कर्मको छोड स्वर्गादि प्राप्तिके निमित्तरूप सकाम कर्मको करता है, (तस्य) उस पुरुषकी (वाचि) लौकिक और शास्त्रीय वाणीमें अपि (भागः) सफलताका प्राप्तिकारक कोई भी अर्थ अथवा प्रयोजन नहीं होता। (ईम् = अयम्) लौकिक उपभोगोंका लालची पुरुष (यत्) वेदके व्यतिरिक्त लौकिक कर्मको (शृणोति) सुख का साधनभूतही श्रवण करता है, (तत्) उस कर्मका सुनना अथवा करना (अलीकम्) व्यर्थही होता है। (हि) जिस कारण (सुकृतस्य) शुभ कर्मज्ञानके (पन्थाम्) रास्तेको (न प्रवेद) सर्व कर्मोंके फलको मुख्य मानकर, कृपण और दरिद्री होनेसे ज्ञान मार्गमें श्रद्धाशून्य होनेसे निष्काम कर्मके अनुष्ठान मार्गको नहीं जानता इसलिये उसका वेदादि सच्छास्त्रका सुनना भी व्यर्थही है। जैसे स्वा. शंकराचार्यका वचन है— **"को दरिद्रो हि विशालतृष्णः"** (विशाल कामनावालेही यथार्थतामें कृपण हैं अर्थात् घोर दरिद्री हैं।)

अथ च— **"यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः॥"**

(बृह. उ. ब्रा. ८, श्रु. १०)

अर्थ— हे गार्गि! जो इस ब्रह्मको न जानकर सकाम कर्म करता हुआ इस लोकसे जुदा होता है, वही कृपण है अर्थात् घोर दरिद्री है। क्योंकि वह अपने कर्मफलकोही भोगता है, मोक्षको प्राप्त नहीं हो सकता और इसीके प्रतिकूल जो इस अविनाशी ब्रह्मस्वरूपको ही जानता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है, वही सच्चा ब्रह्मवेत्ता है।

तुलना— गीतामें सकाम कर्मको निकृष्ट और निष्काम कर्मको उत्तम बताया है। लौकिक-फलकी कामना करनेवाले दरिद्री और नीच होते हैं यही बताया। वेदमें भी वैदिक ज्ञान से लब्ध निष्काम कर्मका परित्याग करके सकाम कर्मकी प्राप्ति करना घोर पाप कहा है; निष्काम कर्म करना, ब्रह्मज्ञानमें बुद्धि रखनी परम लाभप्रद कहा है।

(५०) बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५०)

अर्थ-हे अर्जुन! (बुद्धियुक्तः) जो प्राणी बुद्धियुक्त होकर कर्म करता है अर्थात् सिद्धि और असिद्धिमें समभाव करके परमार्थ-दृष्टिसे कर्म करता है, वह बुद्धियुक्त प्राणी (सुकृतदुष्कृते) सुकृत और दुष्कृत अर्थात् पुण्य और पाप (उभे) दोनोंको (इह) इसी संसारमें अर्थात् इसी जन्ममें (जहाति) त्याग कर देता है। (तस्मात्) इसलिये (योगाय) समत्वबुद्धियोगके लिये अर्थात् सुखदुःखादिमें समत्वबुद्धियुक्त कर्मके लिये (युज्यस्व)जुड जा अर्थात् यत्न कर। (कर्मसु) इस प्रकार बुद्धियुक्त कर्ममें (कौशलम्) चतुरता ही अर्थात् बुद्धियुक्त होकर कर्म करनेमें कर्ता की जो चतुराई है. (योगः) वही योग है। अथवा (योगः) योग ही (कर्मसु) सब प्रकारके कर्मोंमें (कौशलम्) मंगल स्वरूप है। अर्थात् समबुद्धि करके भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिके लिये निष्काम कर्मोंका सम्पादन करना ही कर्ताकी चतुराई अथवा मंगल स्वरूप है ॥ ५० ॥

वेदगीता (मंत्रः)

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन्।
स्वाधीर्देवः सविता॥ (ऋ. ५।८२।८)

अर्थ-(यः) जो (सविता) कर्मयोग अथवा ज्ञानयोगका उत्पादक प्राणी (स्वाधीः=स्व+आ+धीः, यद्वा सु+आ+धीः) अपनी चारों ओर समतामें प्राप्त होनेवाली कर्मयोगबुद्धि अथवा चारों ओर भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिके लिये निष्काम कर्म करनेकी बुद्धिवाला (देवः) ज्ञानयोगसे प्रकाशमान होता हुआ (इमे) इन (उभे) दोनों (अहनी) शुक्ल-कृष्णस्वरूप पुण्य और पापोंको (पुरः) आगे आनेवाले समयमें (अप्रयुच्छन्) न ग्रहण करता हुआ अर्थात् उन दोनोंको ग्रहण करने या छोडनेमें प्रमाद न करता हुआ (एति) संसारयात्रामें जाता है, वही कुशलतायुक्त पुरुष है। अर्थात् इतर पुरुष भी उसीका अनुकरण करें। यथा च—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। (मुं.उ. ३।३)

अर्थ- जब विद्वान् बुद्धियुक्त कर्म करनेवाला कर्मोंके फलको त्यागता हुआ रुक्मवर्ण जो ज्योतिःस्वरूप जगत्कर्ता ब्रह्मयोनि ईश्वररूप पुरुषको देखता है अर्थात् भगवत्स्वरूपको हृदयके नेत्रोंसे अवलोकन करने लग जाता है, तब वह पुरुष सब कर्मोंसे निर्लेप होकर पापपुण्यको नाश करके परम समताको प्राप्त होता है, तब ही उसके दुःखसुख, हानिलाभ, मान-अपमान, जयपराजय इत्यादि सम हो जाते हैं।

तुलना— गीतामें ज्ञानयोगके प्रभावसे मनुष्य समताबुद्धि रखता हुआ पुण्यपापके परित्याग करनेसे कुशलताको प्राप्त होता है अन्यथा नहीं यह उपदेश दिया हुआ है। वेदमें शुक्रकृष्णां सफेदस्याह अर्थात् पुण्यपापके परित्यागसे पुरुषको शांति मिलती है वह बताया है।

(५१) **कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।**
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ५१)

अर्थ- (बुद्धियुक्ताः) सुखदुःखादिमें समताबुद्धियुक्त कर्म करनेवाले (मनीषिणः) मनको वशमें रखनेवाले ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चयसे (कर्मजम्) शुभ और अशुभ कर्मोंसे उत्पन्न हुए हुए (फलम्) फलको (त्यक्त्वा) छोडकर (जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः) बार बार जन्म लेनेके बन्धनसे छूटकर अर्थात् नीच और उच्च योनियोंमें जन्म लेने और मरनेके दुःखसे बचकर (अनामयम्) सर्व रोगोंसे रहित अर्थात् निरुपद्रव (पदम्) आनन्दस्वरूप विष्णुके परम पद अर्थात् मोक्षपदको (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥
(अथर्व. ९।५।१)

अर्थ- हे परमात्मन्! अथवा हे गुरो! (एतम्) निष्काम कर्म करनेवाले, सुखदुःखमें समताबुद्धि रखनेवाले इस बुद्धिमान् जीवात्माको (आ नय) अपने समीप प्राप्त कर। (आ रभस्व) हे जीवात्मन्! तू शुभ कर्म अर्थात् निष्काम कर्मोंका आरंभ कर। जिन कर्मोंके आधारसे (अजः) जीवात्मा (प्रजानन्) निष्काम कर्मोंके मार्गको जानता हुआ (सुकृताम्) सत्कर्म करनेवालों अर्थात् मुक्तात्माओंके (लोकम्) स्थान मुक्तिधामको (अपि गच्छतु) प्राप्त होवे संसारावस्थामें (महान्ति) बडे बडे (बहुधा) बहुत प्रकारके विनश्वर स्वर्गादि लोकोंके प्राप्त करानेवाले (तमांसि) अज्ञानात्मक सकाम कर्मोंको (तीर्त्वा) पार करके (तृतीयम्) ब्रह्मके तृतीय आनन्दमय (नाकम्) अनामय सुखस्वरूप धामको (आ क्रमताम्) प्राप्त होवे ॥१॥

तद्विष्णोः[1] परमं पदं सदा[2] पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्[3] ॥ (ऋ. १।२२।२०; साम. १६७२; वा. य. ६।५; अथर्व. ७।२६।७; तै. सं. १,३,६,१३; ४,२,९,११)

अर्थ- (सूरयः) ज्ञानी जन (दिवि) आकाशमें (आततम्) फैली हुई (चक्षुः इव) प्रतिरोधक वस्तुके न होनेपर आंखकी तरह (विष्णोः) परमात्माके (तत्) उस (परमं पदम्) मुक्तिधामको (सदा) ज्ञानदृष्टिसे सर्वदा (पश्यन्ति) देखते हैं।

उपनिषद्में भी कहा है- "**यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि ॥**" (तै. १।११।२)

अर्थ- जो अनवद्य अर्थात् अनिंदित कर्म हैं वेही सेवन करने योग्य हैं नकि निन्दित अर्थात् निष्काम कर्मोंका नाम अनिन्दित कर्म है, सकाम कर्मोंका नाम निन्दित कर्म है। क्योंकि वह बन्धनके कारण हैं।

तुलना— गीतामें सकाम कर्मोंको बन्धनका कारण कहा है और निष्काम कर्मोंको मुक्तिका साधन बताया है। वेदमें भी इस जीवात्माको अन्धकारमय सकाम कर्मोंका परित्याग और मुक्तिधामको प्राप्त करानेवाले निष्काम कर्मोंकी आज्ञा कही गई है। (१) धर्ममार्गसे चलना (२) निष्काम कर्मोंका आरंभ करना, (३) ज्ञानी होकर अपनी वृद्धि करना, (४) सुखधामकी प्राप्ति, ये इस मंत्रके मुख्य चार उपदेश है।

---

१ विष्णोः- विषेः किच्च उ. ३।३९ इति नु प्रत्ययः। कित्वाद्गुणाऽभावः।
२ सदा-सर्वैकान्येति, पा. ५।३।१५ दाप्रत्ययः "सर्वस्य सोऽन्यतरस्याम्" पा. ५।३।६ सर्वशब्दस्य सभावः।
३ आततम्-तनोतेः कर्मणि क्तः। 'यस्य विभाषा, इतीट् प्रतिषेधः। "अनुदात्तोपदेश" इत्यादिना न लोपः।

(५२) यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥
(भग. अ. २, श्लो. ५२)

अर्थ— हे अर्जुन! (यदा) जिस समय (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (मोहकलिलम्) मोहात्मक अज्ञानरूप कलुषताको अर्थात् अज्ञानताके कठिन दुर्गको (व्यतितरिष्यति) पार कर जावेगी, (तदा) तब तू (श्रोतव्यस्य) सुननेके योग्य वचनों से (च) और (श्रुतस्य) सुने हुए त्रैगुण्यात्मक सकाम कर्मोंके बतानेवाले वेदशास्त्रोंके वचनोंसे (निर्वेदम्) वैराग्यको (गन्तासि) प्राप्त हो जावेगा ॥ ५२ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ (अथर्व. १०।१।३)

अर्थ— हे जीवात्माओं! (यदि) अगर तुम (तमसा) मोहात्मक अज्ञानरूप कलुषतासे (आवृताः) मिले हुए (जालेन) मोहकलिलसे (अभिहिता इव) बांधे हुएकी तरह (स्थ) हो अर्थात् यदि आप अज्ञानरूप मोहके जालसे दबे हुए हो, तब (सर्वाः) सारे (कृत्याः) जन्ममरणफलके देनेवाले सब सकाम कर्मोंको (संलुप्य) अच्छी तरह नाश करके (इतः) इस मनुष्यलोकसे (पुनः) फिर (कर्त्रे) जगत्के कर्ता परमात्माके पास (प्रहिण्मसि) मैं तुम्हें वापस भेजता हूं।

तुलना— गीतामें बुद्धिद्वारा मोहसे पार होना और सांसारिक सुख देनेवाले सकाम कर्मोंसे वैराग्यका होना बताया है। वेदमें भी अगर तुम सकाम कर्मोंके मोहजालसे बन्द हुए निश्चेष्ट पडे हो, तो सब सकाम कर्मोंके परित्याग करनेसे परमात्माके-चरण कमलोंकी प्राप्ति हो सकती है यही बताया है। जैसे—

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत् स यथा तत्र प्राङ् वा उदङ् वा अधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताऽभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥
(छान्दोग्य० १४।६।१)

अर्थ— महात्मा आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं कि हे सोम्य! जैसे कोई चोर किसी पुरुषकी आंखें बांधकर उसकी राजधानी गन्धार नगरसे लाकर किसी निर्जन वनमें छोड देवे, तब वह आंखोंमें पट्टी बंधा हुआ पुरुष पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिण फिरता हुआ कंटकोंमें क्लेश पाता हुआ यों रोता और चिल्लाता है कि, हा! देखो मुझे किसीने मेरी आंखों-पर पट्टी बांधकर यहां इस जंगलमें फैंक दिया है। हा! मैं अत्यन्त क्लेश पा रहा हूं। मेरी रक्षा करो। मेरी आंखें खोलो, मेरे घरका मार्ग बताओ।

ठीक इसी प्रकार संसारके अज्ञानी जीव मोहके निर्जन वनमें चिल्लाते फिरते हैं। इस मोहसे निकलना अति कठिन है। धन, पुत्र, स्त्री आदि मोहके कारण हैं। यह मेरा है, और मैं इसका हूं, ऐसा जाननाही मोह है, अतः इस मोहका तरना अति कठिन है। इस मोहका दूर करनाही मुक्तिपदका पाना है।

(५३) श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला[1] बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥
(भग. अ. २, श्लो. ५३)

अर्थ— हे अर्जुन! (श्रुतिविप्रतिपन्ना) अनेक प्रकारके साध्य साधनके प्रकाशित करनेवाली श्रुतियोंसे विक्षिप्त हुई हुई अर्थात् व्याकुल हुई हुई और अनेक प्रकारके शास्त्रोंके सुननेसे संशयमें पडी हुई (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (यदा) जिस समय (समाधौ) समाधि अर्थात् ईश्वरके स्वरूपमें (निश्चला) विक्षेपोंसे रहित हुई हुई (अचला) अक्रिय अर्थात् अटल हुई हुई (स्थास्यति) ठहर जावेगी, (तदा) तब तू (योगम्) बुद्धिकी स्थिरताके लक्षणको, यद्वा योगफलके तत्त्वज्ञानको अर्थात् जीवात्मा और परमात्माके तत्त्वज्ञानको (अवाप्स्यसि) प्राप्त करेगा ॥ ५३ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

इदं त एकं पर ऊं त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व। संवेशने तन्वं चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥
(ऋ. १०।५६।१; साम. ६५; अथर्व. १८।३।७, तै. ब्रा. ३,७,१,३; तै. आ. ६,३,१; ४,२)

---

1 समाधौ= समाधीयते चित्तम् अस्मिन् इति समाधिः परं ब्रह्म।

अर्थ- हे जीवात्मन् ! (ते) तेरा (इदं) सकाम कर्म योगात्मक यह (एकम्) एक काम जगत्में विद्यमान है । (ऊ) और (परः) सकाम कर्मयोगके आगे (ते) तेरा (एकम्) एक निष्काम कर्म अर्थात् ब्रह्मज्ञान विद्यमान है । उस ब्रह्मज्ञानसे (तृतीयेन) तीसरी (ज्योतिषा) अखण्डाकार अचल ज्ञानमयी ज्योतिसे (संविशस्व) अच्छी प्रकार परमात्म-ज्ञानमें प्रवेश कर अर्थात् उस तीसरी ज्योति परब्रह्ममें अचल भावसे लीन हो जा । (ऋग्वेदे) तन्वः- अपने शरीरके सब कर्मोंके (संवेशने) परब्रह्ममें अर्पण करनेपर' (योऽहं सोऽसौ, योऽसौ सोऽहम्) 'जो मैं हूं वह वह है, जो वह है वह मैं हूं। तथा ' (योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्, ओं खं ब्रह्म । यजु.४०।१७) जो वह पुरुष सूर्यमें नजर आता है वह मैं हूं। ओं खं ब्रह्म है । इस तरह (चारुः) सुन्दर कल्याणवाला हुआ हुआ (देवानाम्) विद्वान् ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंका (प्रियः) प्यारा हुआ हुआ (परमे) अत्युत्कृष्ट (जनित्रे) जगत्के उत्पन्न करनेवाले परमात्मामें (एधि) बढ जा अर्थात् मुक्त हो जा । यद्वा (देवानाम्) प्रकाशमान सब पदार्थोंके (जनित्रे) उत्पन्न करनेवाले परमात्मामें (प्रियः) प्रेम रखता हुआ (एधि) वृद्धिको प्राप्त हो अर्थात् मुक्त हो जा । परन्तु सामवेदमें—

' संवेशनस्तन्वे३ ' (साम. ६५)

ऐसा पाठ है । इसका अर्थ इस प्रकार लगावें— तीसरी आदित्य ज्योतिसे अपने आत्माको (संविशस्व) संयुक्त कर दें, क्योंकि सूर्यगत चैतन्य और आत्मचैतन्यमें कोई भेद नहीं है । इसलिये (तन्वे) इस शरीर परब्रह्मके तत्त्वज्ञानको अभ्यास करनेके अनन्तर ' बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ' इस उक्तिसे फिर उत्तम शरीर ग्रहण करनेके निमित्त (चारुः) सुन्दर कल्याणरूप होकर (प्रियः) उस परमात्माका प्यारा हुआ हुआ यद्वा उसके साथ प्रीति करता हुआ (देवानाम्) देवताओंमें भी (परमे) अत्युत्कृष्ट (जनित्रे) उत्पादक परब्रह्ममें (संवेशनः) भले प्रकार प्रवेश करनेवाला (एधि) हो । अथर्ववेदमें ' संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे '' ऐसा पाठ है ।

अर्थ- उस तीसरी परब्रह्म ज्योतिमें (संवेशने) अच्छी प्रकार प्रविष्ट होनेपर (परमे) अत्युत्तम (सधस्थे) मुक्तपुरुषोंके निवासस्थान अर्थात् मुक्तिधाममें (देवानां प्रियः) बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुषोंका प्यारा हुआ हुआ (तन्वा) निष्काम कर्म द्वारा इस वर्तमान शरीरसेही (एधि) उन्नतिको प्राप्त हो जा । तथा च—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(मुण्डक. ३।२।८)

अर्थ- जैसे भिन्न नदियां गंगा, यमुना, सरस्वती आदि अपने मार्गपर बहती हुई समुद्रमें जाकर नाम और रूपको छोडकर अस्त हो जाती हैं अर्थात् समुद्रमें मिल जानेके पश्चात् फिर उनके भिन्न भिन्न नामका पता भी नहीं रहता, उसी प्रकार विद्वान् अज्ञानकृत नामरूपोंसे रहित हुआ, उस परेसे परे दिव्य पुरुष अर्थात् परब्रह्ममें जाकर लय हो जाता है। मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, इत्यादि बातें 'योगस्थ' होनेहीसे भगवत्स्वरूपमें लय होकर मिट जाती हैं । तथा च—

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत् ॥

(कैवल्योपनिषद् १।१६)

अर्थ— जो परब्रह्म सर्वात्मा हृदयमें निवास करनेवाला है, सर्वान्तर्यामी समग्र विश्वका आधार और बडेसे बडा और सूक्ष्मसे सूक्ष्म और नित्य है, सोही तू है और तूही सो है । इस अवस्थाकी प्राप्तिको योग-समाधि-प्राप्ति अथवा स्थितप्रज्ञता कहते हैं । स्थितप्रज्ञही परमानन्दको लाभ करता है ।

तुलना- गीतामें सकाम कर्मोंसे बुद्धिको हटाकर निष्काम कर्मयोगमें स्थित होनाही मुक्तिकी प्राप्ति, भगवच्चरणारविन्दकी उपलब्धि होती हैं, ऐसा बताया है । वेदमें भी 'सकाम कर्म, निष्काम कर्म' दो प्रकारके कर्म बताये । निष्काम कर्मकोही तृतीय ज्योतिः अर्थात् ब्रह्मज्योतिके परम धामकी प्राप्तिका कारण बताया है ।

अर्जुन उवाच—

(५४) स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

श्री भगवान् उवाच—

(५५) प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५४-५५)

अर्थ– अर्जुनने कहा–(हे केशव!) हे सुन्दर केशोंवाले वासुदेव! (समाधिस्थस्य) योगसाधन करते करते समाधिमें स्थिर हो जानेवाले (स्थितप्रज्ञस्य) आत्माहीमें स्थिर बुद्धि-वाले पुरुषका (का भाषा) क्या लक्षण है अर्थात् वह किस प्रकार पुकारा जाता है? तथा (स्थितधीः) स्थिर बुद्धिवाला स्वयं (किं प्रभाषेत) क्या बोलता है? और (किं आसीत) कैसे बैठता है और (किं व्रजेत) कैसे चलता है? सो मुझे समझा कर कहो ॥ ५४ ॥

श्रीभगवान् कृष्णजी कहने लगे–(हे पार्थ!) हे पृथाका पुत्र अर्जुन! (यदा) जब जीवात्मा (आत्मना) अपने आत्मासे (आत्मनि एव) अपने आत्मामें ही (तुष्टः) सन्तुष्ट रहनेवाला पुरुष (मनोगतान्) अपने मनमें प्रवेश की हुई (सर्वान्) सब (कामान्) विषय कामनाओंको (प्रजहाति) अच्छी तरहसे मूलके साथ परित्याग कर देता है (तदा) तब वह (स्थितप्रज्ञः) स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धिवाला (उच्यते) कहा जाता है॥५५॥

वेदगीता (मंत्रः)

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः
समधात् सरस्वती । इन्द्रस्य रूपꣳ शतमा-
नमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥

(वा. य. १९।९३)

अर्थ– हे जीवात्माओ! (तत् अश्विना) योगाभ्यासके रसमें व्याप्त हुए हुए वह दोनों सिद्ध और साधक (भिषजा) सद्वैद्य-की तरह स्वस्थचित्त हुए हुए (अंगानि) योगके अंगोंको (आत्मन्) अपने स्वरूपमेंही (आत्मानम्) स्वस्वरूपको (अंगैः) योग-समाधिके अंगोंसे (समधात्) समाधान करते हैं। (सर-स्वती=सरस्वान्) आत्मरसका ज्ञाता वह प्राणी (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वरके (शतमानम्) संख्यातीत मान [प्रमाण] वाले (ज्योतिः) ज्योतिर्मय (अमृतम्) अमृत अर्थात् अविनाशी (रूपम्) स्वरूपको (आयुः) आयुःपर्यन्त (चन्द्रेण) अतीवानन्दसे (दधानाः) धारण करते हुए स्थित-प्रज्ञ हो जाते हैं। यथा च—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

(बृहदा. ४।४।७)

अर्थ—प्राणीके हृदयमें जितने प्रकारकी कामनाएं भरी हैं जब सब नाश हो जाती हैं, तब (मर्त्यः) मनुष्य (अत्र) इस शरीरमें (अमृतः) मुक्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्ममें मिल जाता है। ऐसे पुरुषकोही स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

तुलना– गीतामें कामनाओंका परित्याग और आत्मसंतुष्टि से स्थिर बुद्धि होनेका उपदेश दिया है। वेदमें भी कामना-परित्यागसे स्थितप्रज्ञ पुरुष हो सकता है, यह बताया है।

(५६) दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५६)

अर्थ– (दुःखेषु) प्रारब्ध कर्मके फलसे उत्पन्न हुए हुए आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीन प्रकारके दुःखों में (अनुद्विग्नमनाः) जिसके मनको उद्वेग नहीं होता अर्थात् व्याकुलता नहीं होती, वह अन्य (सुखेषु) सुखोंकी प्राप्तिमें (विगतस्पृहः) सुख बढानेकी आकांक्षासे रहित होता है। वह और (वीतरागभयक्रोधः) राग, भय, क्रोधसे रहित (मुनिः) मननशील विद्वान् (स्थितधीः) स्थितप्रज्ञ अर्थात् सर्व अवस्थामें स्थिर बुद्धिवाला (उच्यते) कहा जाता है ॥ ५६ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि
शर्धताम् । वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥

(वा. य. १५।४०)

अर्थ— हे जीवात्मन्! (येन) जिस जीवात्माने (समत्सु) संग्रामादि दुःखोंमें और हर्षादिमें दुःखों और सुखोंको (सासहः) अत्यन्त सहनशीलता प्राप्त कर ली है, ऐसा सुखदुःखादिको समझनेवाला तू (भूरि) बहुतही (शर्धताम्) प्राकृतिक बलको दिखानेवाले प्राणियोंमें (स्थिरा=स्थिराणि) स्थिर हुए हुए सुखदुःखरागद्वेषादिकोंको (अव+तनुहि) मत विस्तृत कर अर्थात् उपदेशद्वारा उनको भी सुखदुःखादिके मोहसे रहित कर। (ते) तेरी (अभिष्टिभिः) रागभयक्रोधादिके परित्यागकी इच्छाओंसे (वनेम) वह भी सेवित हों अर्थात् स्थिरबुद्धि बनें ॥४०॥

तुलना– दुःखोंमें अव्याकुलता, सुखोंमें अनिच्छा, क्रोध-भयरागके परित्यागसे मनुष्य स्थितधी हो सकता है, यह गीतामें

कहा, है और वेदमें सांसारिक संग्रामके दुःखोंमें अव्याकुलता, सुखदुःखोंकी सहनशीलता ही स्थिरधी होनेके कारण बताये हैं।

(५७) यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५७)

अर्थ- (यः) जो पुरुष (सर्वत्र) धन, स्त्री, पुत्रादि स्वपरिवारमें तथा अपने देहमें (अनभिस्नेहः) स्नेहसे रहित है और (तत-तत्) उस उस (शुभाऽशुभम्) शुभ और अशुभको (प्राप्य) प्राप्त करके (न+अभिनन्दति) हर्षको प्राप्त नहीं होता और (न द्वेष्टि) द्वेष नहीं करता (तस्य) उस पुरुष की (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) प्रतिष्ठित कही जाती है अर्थात् वही स्थितप्रज्ञ और स्थितधी कहा जाता है ॥५७॥

वेदगीता (मंत्रः)

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः। यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥

(ऋ. १०।७१।१, ऐ. आ. १।१।१।४४)

अर्थ- हे (बृहस्पते) हे विद्वन्! (प्रथमम्) उत्पत्तिके अनन्तर अन्य वाणीके बोलनेसे पहिले ही (नामधेयम्) " ओम् " इस नामको (दधानाः) धारण करते हुए अर्थात् उच्चारण करते हुए (यत्) जो पुरुष (अग्रम्) मुख्य (वाचः) ब्रह्मात्मक वाणीको (प्रैरत) उच्चारण करते हैं, अन्य वाणीका उच्चारण नहीं करते, (एषाम्) राग भय क्रोधादिसे रहित शुभाशुभकी प्राप्ति में हर्ष और शोकसे रहित इन पुरुषोंके (श्रेष्ठं) सबसे श्रेष्ठ (अरिप्रम्) पापरहित (यत्) जो जीवन है (एषाम्) इन प्रतिष्ठित बुद्धिवालोंका (तत्) हर्षशोकादिसे रहित ज्ञान अथवा जीवन (गुहा) हृदयाकाशमें (निहितं) स्थित हुआ हुआ (प्रेणा+प्रेम्णा) प्रेमसे (आविः) प्रकट होता है ॥१॥ तथा च-

तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम् ॥

(बृहदा. ४।३।२१)

अर्थ-जैसे परम प्रिय स्त्रीसे संपरिष्वक्त अर्थात् भोगनिमित्त मिलनेपर अत्यन्त कामके सुखकी प्राप्तिके कारण प्राणीको बाहर भीतरकी कुछ भी सुध नहीं रहती, वैसे ही जब इस पुरुषकी प्रज्ञा आत्माके संग जा मिलती है, अर्थात् भगवत्स्वरूप में संलग्न हो जाती है, तब इसे बाहर भीतरके सुखदुःखका बोध नहीं रहता ।।

तुलना-गीताने सब वस्तुमें स्नेहका परित्याग, सुखदुःखदायी वस्तुओंमें प्रसन्नता और द्वेषका परित्याग ही प्रज्ञा-प्रतिष्ठितिका कारण बताया है। वेदमें भी शुभ वचनोंका उच्चारण अशुभ वचनोंका परित्याग ही प्रज्ञा-प्रतिष्ठाके कारण बताये हैं।

(५८) यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५८)

अर्थ- (कूर्मः) कछुवा (अंगानि) करचरणादिकोंको (इव) जैसे (संहरते) अपने अन्दर सुकेड लेता है, ऐसे ही (यदा) जब योगाऽवस्थामें (अयम्) यह यत्न करनेवाला यति (इन्द्रियाणि) चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियोंको (इन्द्रियार्थेभ्यः) अपनी अपनी इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंसे (सर्वशः) सब ओरसे अपने भीतर ही भीतर (संहरते) समेट लेता है, तब (तस्य) उस यतिकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) प्रतिष्ठाके योग्य होती है अर्थात् तब ही वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ॥५८॥

वेदगीता (मंत्रः)

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः। अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥

(ऋ. ६।७५।६, तै. सं. ४,६,६,२; निरु. ९.१६)

अर्थ- (सु+सारथिः) सुशिक्षित, स्थिर-बुद्धि, रथात्मक देहका संचालक जीवात्मा (रथे) देहात्मक रथमें (तिष्ठन्) रहता हुआ (पुरः) सामने खडे हुए (वाजिनः) वेगवाले इन्द्रियात्मक घोडोंको (यत्र+यत्र) जहां जहां जिस जिस कार्यमें (कामयते) ले जानेकी इच्छा करता है, वहां वहां (नयति) ले जाता है अर्थात् इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता हुआ संसार-यात्रा करता है, नकि इन्द्रियोंके पीछे स्वयं चलता है। (अभीशूनाम्) इन

इन्द्रियोंकी वृत्तिरूपी रश्मियोंकी (महिमानं) बडाईको (पनायत×) गाओ क्योंकि वह वृत्तियाँ ज्ञानीके बलसे अन्तर्मुख अर्थात् नियंत्रित हुई हैं। (रश्मयः) जो इन्द्रियवृत्तिरूपी बागें (पश्चात्) सारथिके पीछे पीछे (मनः) सारथिके मनके अनुसार (अनुयच्छति) इन्द्रियरूपी घोडोंको नियममें रखती हैं।

तथा च उपनिषद्में कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः

(कठोप० १।३।३,४)

अर्थ– हे जीवात्मन्! आत्माको रथी अर्थात् रथपर बैठनेवाला राजा जान और शरीरको रथ ही जान। बुद्धिको सारथि (कोचवान) जान और मनको बागें जान, इन्द्रियोंको और उनमें रहनेवाले विषयोंको घोडे जान। तथा च—

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्॥

(माण्डूक्य. उप. श्रु. ५)

अर्थ– जिस अवस्थामें सोया हुआ पुरुष किसी कामनाको नहीं चाहता और नहीं किसी स्वप्नको देखता है, उसे सुषुप्तावस्था कहते है। उस सुषुप्ति अवस्थामें सब इन्द्रियाँ एकीभूत होकर समिट जाती हैं, प्रज्ञा (बुद्धि) समिटकर घनीभूत हो जाती है। तथा प्राणी सब कामनाओंसे रहित होकर आनन्दमय और आनन्द भोगनेवाला हो जाता है। जब इस प्रकार आत्मानन्द अनुभव करने लग जाता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं॥

तुलना– गीतामें इन्द्रियोंके विषयोंको तथा मनको आत्माके वशकर लेनेसे स्थितप्रज्ञ हो सकता है, यह बताया। वेदमें भी देहमें रहता हुआ भी इन्द्रियोंको वश करनेसे मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है, यह बताया।

(५९) विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(भगव. अ. २, श्लो. ५९)

अर्थ–(निराहारस्य) इन्द्रियोंसे विषयोंको न भोगनेवाले यद्वा रोगोंके कारण वा कठिन तपस्याके कारण निराहार रहनेवाले (देहिनः) देहाऽभिमानी मूर्खके (विषयाः) रूपरसगन्धादि विषय तो (विनिवर्तन्ते) निवृत्त हो जाते हैं परन्तु (रसवर्जम्) उन विषयोंका रस नहीं छूटता अर्थात् उन विषयोंका अनुराग, स्वाद, वा मधुरता उनके चित्तसे नहीं जाती। किन्तु (अस्य) इस स्थितप्रज्ञ यतिका (रसः) रञ्जनात्मक विषयानुराग, स्वाद वा मधुरता (अपि) भी (परम्) उस परब्रह्मस्वरूप परमानन्दमय भगवत्स्वरूपको (दृष्ट्वा) देखकर (निवर्तते) नष्ट हो जाता है॥५९॥

वेदगीता (मंत्रः)

दश राजानः संमिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः। सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु॥

(ऋ. ७।८३।७)

अर्थ– (इन्द्रावरुणा!) हे श्रेष्ठ जीवात्मन्! (राजानः) अपने अपने विषयमें प्रकाशमान होते हुए (अयज्वः) परमात्मसंगति अथवा ब्रह्मोपासनासे विमुख करनेवाले (दश) पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय दोनों (संमिताः) इकट्ठे मिले हुए भी (सुदासम्) परमात्मसेवकको अर्थात् ज्ञानी पुरुषको (न युयुधुः) युद्धमें प्राप्त नहीं करते अर्थात् भगवद्भक्तको इन्द्रियगण नहीं सताते, बल्कि विषयोंके ग्राहकोंको इन्द्रियगण दुःख देती हैं। इसलिये (अद्मसदाम्) [अद्म अन्नका नाम है "अन्नं वै ब्रह्म" अन्न ब्रह्मका नाम है] ब्रह्ममें वास करनेवाले यद्वा ब्रह्मात्मक यज्ञ करनेवाले (नृणाम्) मनुष्योंकी (उपस्तुतिः) परमात्मभक्ति अथवा परमात्माकी स्तुति (सत्या) सफल होती है। (एषाम्) इन इन्द्रियनिग्रहवाले परमात्मोपासकोंकी (देवाः) इन्द्रियाँ भी (देवहूतिषु) ब्रह्मयज्ञोंमें (अभवन्) रहती हैं। अर्थात् इन ब्रह्मज्ञानियोंकी इन्द्रियोंका मुख अन्दरकी ओर होता है न कि बाहरकी ओर होता।

तथा च—

× "पनायन" मध्यम पुरुषका बहुवचन है। इसका अर्थ होना चाहिये 'स्तुति करो=गाओ' परन्तु निरुक्तमें इसके अर्थके स्थान 'पूजयामि' पाठ दिया है, इसपर दुर्गाचार्यने लिखा है, यहां सम्बोध्य कोई नहीं, इसलिये "पनायत" का अर्थ पूजयामि, पुरुष और वचनके व्यत्ययसे किया है। किन्तु श्रीसायणाचार्यने जो पाठ उद्धृत किया है, उसमें पाठ "पूजयत" है।

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥
(बृहदार. ४।४।१२)

अर्थ— जन प्राणी सब विषयत्याग करते करते रस-रहित हो केवल आत्मरसमें मग्न हो जाता है, तब ऐसा जानता है । यह पुरुष मैं हूं अर्थात् सब रसोंमें भगवद्रसको व्यापक देखते हुए अपनेको भगवन्मय देखता है। तब वह क्या इच्छा करे ? किसके लिये शरीरको दुःख करे अर्थात् ऐसा 'स्थितधी' अन्य किसी कामनाके लिये शरीरको तप, व्रतादि क्लेश नहीं देता ।

तुलना– गीतामें उपवास करनेसे इन्द्रियोंकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, परमात्माके दर्शनसे शेष इन्द्रियरसाभास भी नष्ट हो जाता है, यह बताया । वेदमें भी परमात्माके दर्शनसे विमुख करनेवाली इन्द्रियांही हैं, इनका परित्याग श्रेष्ठ है, यह बताया ॥

(६०) यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ६०)

अर्थ — (कौन्तेय !) हे कुन्तीके पुत्र अर्जुन ! (प्रमाथीनि) मथन करनेवाली अर्थात् व्याकुल करनेवाली (इन्द्रियाणि) चक्षुःश्रोत्रादि इन्द्रियाँ (यततः) समाधिकी सिद्धिके लिये अथवा अपनी प्रज्ञाकी स्थिरताके लिये अर्थात् मोक्षप्राप्तिके लिये यत्न करनेवाले (विपश्चितः) बुद्धिमान् विवेकी (पुरुषस्य) के (मनः) मनको (अपि) भी (हि) निश्चय करके (प्रसभम्) बलात्कार अर्थात् जबरदस्तीसे (हरन्ति) अपने अपने विषयकी ओर खींच लेती हैं अर्थात् विषयी बनाकर इसके सब यत्नोंको धूलमें मिला देती हैं ॥ ६० ॥

वेदगीता (मंत्रः)

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या । व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ (अथर्व. ११।८।४)

अर्थ— (प्राणापानौ) हृदय और नासिकाके अग्रिमामें रहनेवाली प्राणवायु तथा नीचेकी ओर जानेवाली अपान वायु, (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रिय और (श्रोत्रम्) कर्ण इन्द्रिय, (अक्षितिश्च) सांसारिक प्रवाह चलानेवाली अभौतिक ज्ञानशक्ति और (या) जो (क्षितिः) नाश होनेवाली कर्मशक्ति अर्थात् समस्त कर्मेन्दिय, (व्यानोदानौ) व्यान और उदान, वायु, (वाक्) वाणी, (मनः) मन, (ते) यह प्राणापानादि ग्यारह इन्द्रिय (वै) निश्चय (आकूतिम्) पुरुषके सांसारिक संकल्पको (आवहन्) धारण करते हैं न कि पारलौकिक संकल्पको धारण करते हैं।

तुलना– गीतामें मस्त इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषके मनको अपनी ओर खींच लेती हैं, विद्वान् भी पतित हो जाता है, यह बताया है। वेदमें भी यही इन्द्रियाँ मनुष्यको सांसारिक अभिलाषाओंकी ओर ले जाती हैं यह बताया है।

(६१) तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ६१)

अर्थ— (मत्परः) जो मुझे सबका अन्तरात्मा श्रेष्ठ जानकर मेरेमें परायण होकर यद्वा मेरी भक्तिमें तत्पर मेरे वचन माननेमें लगा हुआ (तानि) उन दुष्ट मथनेवाली सर्वाणि) सब इन्द्रियोंको (संयम्य) अपने वशमें करके (युक्तः) समाहितचित्त होकर (आसीत) निर्व्यापार बैठ जाता है, वही यथार्थ यति है (हि) क्योंकि (यस्य) जिसकी (इन्द्रियाणि) वागादि इन्द्रियां (वशे) वशमें है, (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थित कही जाती है । उसीके मनको ये इन्द्रियाँ बलात्कारसे नष्ट नहीं कर सकतीं ॥६१॥

वेदगीता (मंत्रः)

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा । यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत् ॥ (अथर्व. ११।८।३)

अर्थ- (पुरा) पहिलेपहिल अर्थात् शरीरोत्पत्ति-कालमें (दश देवाः) दश इन्द्रियाँ अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय (देवेभ्यः) अपनी अपनी सूक्ष्मतन्मात्राओंके (साकम्) एक साथ (अजायन्त) उत्पन्न हुए है । (यः वै) जो पुरुष निश्चयसे (तान्) उन वागादि दश इन्द्रियोंको (प्रत्यक्षम्) साक्षात् सांसारिक पदार्थोंको प्रत्यक्ष करानेवाला (विद्यात्) जान लेता है अर्थात् यह इन्द्रिय संसारमें प्रवृत्ति करानेवाले हैं न कि मुक्तिमार्ग दिखानेवाले हैं, ऐसा

जान लेता है (वा+च) और (सः) वह (अद्य) इस जन्ममेंही (महत्) देशकालकृत परिच्छेदसे रहित सर्वगत ब्रह्मको (वदेत्) बतला सकता है अर्थात् वही स्थितप्रज्ञ होकर ब्रह्मज्ञानका उपदेश कर सकता है। यद्वा—

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदासं
इन्द्रावरुणावशिक्षतम्। श्वित्यञ्चो यत्र
नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त
तृत्सवः ॥ (ऋ. ७।८३।८)

अर्थ- (इन्द्रावरुणौ) हे ब्रह्मज्ञानी जीवात्माओ! (दाशराज्ञे-दशराज्ञे-दीर्घः छान्दसः विभक्तिव्यत्ययश्च दशराजभिः) अपने अपने विषयोंसे प्रकाशमान दश इन्द्रियोंसे (विश्वतः) चारों ओर (परियत्ताय) लपेटे हुए (सुदासे=सुदासाय विभक्तिव्यत्ययः) अच्छे भगवद्भक्तके लिये (अशिक्षितम्) इन्द्रियोंके वश करनेके लिये शिक्षा दीजिये। (यत्र) जिस उपदेशके प्रभावमें रहकर (श्वित्यञ्चः) ब्रह्मोपदेशसे निर्मल होते हुए (कपर्दिनः) जटाधारी तपस्वी (धीवन्तः) विवेकबुद्धिवाले अथवा निष्काम कर्मयोग-वाले (तृत्सवः) संसारसे तरनेकी इच्छावाले मुमुक्षु पुरुष (नमसा) नमस्कारसे अथवा अन्नादिसे (धिया) भगवत्स्तुतिसे (असपन्त) भगवत्सेवा करते हैं। तथा च उपनिषद्में—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥
(कठोप. ३।६,८)

अर्थ-जो प्राणी विज्ञानवान् है, जो निवृत्ति वा प्रवृत्तिमार्गमें अपनी बुद्धिसे ठीक ठीक उचित व्यवहार करता है, वही मनको काबू करके आत्मा और मनको एक सीधमें करके चतुर सारथिके समान अपने इन्द्रियरूप सुशिक्षित अश्वोंको आत्मज्ञानकी वाणीरूपी डोरीसे युक्त किये हुए शुभचित्त होकर आत्मानन्दको भोगता है। अर्थात् चतुर सारथीके घोडोंके समान ज्ञानीकी इन्द्रियां श्रेष्ठ और उत्तम स्वभाववाले अश्वोंके समान अपने मार्गपर ठीक ठीक ले जाती हैं तथा भगवत्स्वरूपमें मिला देती हैं। जो विज्ञानवान्, मनको काबू करनेवाला, अन्दर बाहरसे सदा शुद्ध हुआ हुआ है, वह तो सब प्रकारके पापोंसे रहित होकर (तत्पदम् आप्नोति) उस ब्रह्मके परम पदको प्राप्त हो जाता है, जिससे जन्ममरणसे रहित होकर फिर संसारके बन्धनमें नहीं आता॥

तुलना- गीतामें इन्द्रियोंके वश करनेसे मुक्तिमार्ग बताया है। वेदमें भी इन्द्रियोंके मोहके परित्यागकी शिक्षा होनेसे मुक्ति हो सकनेका मार्ग बताया है।

(६२) ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
(६३) क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।
(भगव. २, श्लो. ६२-६३)

अर्थ- (विषयान्) रूपरसगंधादि विषयोंको (ध्यायतः) मनसे वारंवार चिन्ता करते हुए (पुंसः) पुरुषकी (तेषु) उन विषयोंमें (संगः) आसक्ति अर्थात् प्रीति (उपजायते) उत्पन्न हो जाती है। (संगात्) उस आसक्तिसे आहिस्ता आहिस्ता (कामः) उन विषयोंमें अभिलाषा (सञ्जायते) उत्पन्न हो जाती है। (कामात्) विविध विषयोंके भोगोंकी अभिलाषासे (क्रोधः) गुस्सा (अभिजायते) उत्पन्न हो जाता है। (क्रोधात्) क्रोधसे (संमोहः) मोह अर्थात् कार्याकार्य-विवेकशून्यता हो जाती है। (संमोहात्) कार्याकार्य-विवेकशून्यतासे (स्मृतिविभ्रमः) आत्म-विस्मृति हो जाती है तथा शास्त्रवचनोंमें भ्रम उत्पन्न हो जाता है। (स्मृतिभ्रंशात्) स्मृतियोंमें भ्रम होनेसे (बुद्धिनाशः) बुद्धिका नाश हो जाता है, (बुद्धिनाशात्) बुद्धिके नाशसे (प्रणश्यति) प्राणी नाश हो जाता है, वा सर्व प्रकार पुरुषार्थहीन होकर संसारदुःखमें डूब जाता है ॥६२-६३॥

वेदगीता (मंत्रः)

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा
हृषितासो मरुत्वन्। तिग्मेषव आयुधा
संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः॥
(अथर्व. ४,३१,१; ऋ. १०,८४,१; तै. ब्रा. २,४,१,१०; निरु० १०,३०)

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा
तविषस्य प्रचेतः। तं त्वा मन्यो अक्रतु-
र्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥
(अथर्व. ४,३२,५; ऋ. १०,८३,५)

अर्थ— (हे मरुत्वन्) हे क्रोधावेशसे मरनेवाले जीवात्मन् ! (मन्यो !) हे क्रोधविशिष्ट जीवात्मन् ! (त्वया) क्रोधावेशवाले तुझ पुरुषसे (सरथम्) देहोपाधियुक्त जीवात्माको (आरुजन्तः) दुःखी करते हुए (हर्षमाणाः) दूसरेके दुःख देनेसे मनमें प्रसन्न होते हुए (हृषितासः=कृषितासः) कार्यके न होनेसे कुपित होते हुए (तिग्मेषवः) तीक्ष्ण वचनरूप बाणोंवाले (आयुधा=आयुधानि) क्रोधसे दूसरोंको मारनेके लिये हथियारोंको (संशिशानाः) तीक्ष्ण करते हुए (नरः) मनुष्य (अग्निरूपाः) अग्निका रूप धारण किये हुए (उपप्रयन्तु) संमुख प्राप्त होते हैं।

(प्रचेतः) हे विद्वन् ! (तव) तेरे (तविषस्य) ज्ञानबलके (अभागः सन्) भाग न प्राप्त करनेके कारण (क्रत्वा) कम करनेकी शक्तिसे (अप परेतः) दूर (अस्मि) हुआ हूं (हे मन्यो) हे क्रोध ! (अक्रतुः) विवेक जन्य शुभ कर्मसे रहित यद्वा तेरे प्रभावसे कार्याकार्य विवेकशून्य हुआ हुआ मैं (तं) उस (त्वा=त्वाम्) तुझे (जिहीड) क्रोधित किया (स्वा) अपने (तनूः) मेरा शरीररूप होकर तू (बलदावा) बल देनेवाला होकर (मा) मेरे पास (आ+इहि) अच्छी तरह प्राप्त हो।

मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृहीतो
मनसा ह कामान् कामयते। (बृह. ३।२।७)

अर्थ- मन ग्रह है और कामना अतिग्रह है। इसलिये सदा कामनाओंके पीछे पीछे दौड़ना मनका स्वाभाविक गुण है। कामनासे पकड़ा हुआ मनसे ही कामनाको चाहता है। यद्वा—

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं
सहाध्या। तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा॥
(अथर्व. ६।१३२।१)

अर्थ— (देवाः) विद्वान् लोग भी (शोशुचानं) शोक करानेवाले (यं) जिस (स्मरं) कामको (आध्या सह) क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश तथा तज्जनित व्यथाओंके साथ (अप्सु अन्तः असिञ्चन्) जलके प्रतिनिधिभूत अपनी वीर्य तथा रक्तमें सींचते हैं। (वरुणस्य) वरने योग्य शान्तिमय जलके (धर्मणा) धारण करनेवाले उस धर्मसे (ते) तुझ कामके (तम्) उसके दुःखात्मक कामको (तपामि) तपाता हूं अर्थात् काम शान्त होनेसे हमें भी न सतावे॥१॥

तुलना – गीतामें बुद्धिके नाशका मूल कारण काम है, उस कामसे ही क्रोध, क्रोधसे मोह और मोहसे बुद्धिभ्रंश कहा है। अतः कामनाका परित्याग ही सर्वोत्तम है। वेदमें भी 'काम के साथ नाश लगा हुआ है, अतः उसे दूर करना चाहिये। जितना धर्मानुकूल काम हो उतनाही लेना चाहिये, धर्मविरुद्ध कामको छोड़ देना चाहिये। इसलिये कहा है कि कामके साथ अनेक विपत्तियां लगी हुई हैं और विपत्तियोंसे मनुष्य शोकाकुल हो जाता है। यह काम सबको शोकसागरमें डालनेवाला है। इसलिये मनके संयमसे उसे तपाना या सुखाना चाहिये, जिससे वह दूर होगा और कष्ट न दे सकेगा।

(६४) रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।
(भगव० अ० २, श्लो. ६४)

अर्थ— (विधेयात्मा) मनको वश रखनेवाला (तु) तो (रागद्वेषवियुक्तैः) रागद्वेषसे रहित (आत्मवश्यैः) अपने वशमें किये हुए (इन्द्रियैः) वागादि इद्रियोंसे (विषयान्) रूप रस आदि विषयोंको (चरन्) भोगता हुआभी (प्रसादम्) परम प्रसन्नताको अर्थात परमात्माके साक्षात्कार कर लेनेयोग्य चित्तकी स्वच्छताको (अधिगच्छति) प्राप्त कर लेता है॥ ६४॥

वेदगीता (मंत्रः)

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो
दृशीके वृषणश्च पौंस्ये। प्र ये न्वस्यार्हणा
ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः
(ऋ. १०।९२।७)

अर्थ— जो प्रसन्नात्मा ज्ञानी पुरुष (शशमानासः) इंद्रियोंको अपने वशमें करके भगवत्स्तुति करते हुए (इन्द्रे) आत्मामें अथवा मनमें (भुजं) पालना अथवा विषयोंसे अपनी रक्षाको (आशत) प्राप्त करते हैं अर्थात् अपने आत्माको और मनको इन्द्रियोंके विषयोंसे रक्षा करते हैं। (सूरः) सब इंद्रियोंको स्वेच्छासे प्रेरणा करनेवाला विद्वान् (दृशीके) केवल जीवननिर्वाहके लिये सब वस्तुओंके देखने या ग्रहण करनेमें (आशत) प्राप्त होता है। (वृषणः) ज्ञानामृतके वर्षाव करनेवाला मनको वश रखनेवाला विद्वान् (पौंस्ये) आत्मबलमें (आशत) प्राप्त हो जाता है। (कारवः) भगवत्स्तुति करनेवाले विवेकी जन (अस्य) इस आत्माके (अर्हणा) ज्ञानध्यानादि पूजाको (ततक्षिरे) प्रकर्षतासे करते हैं। वे आत्मविवेकी पुरुष (नृषदनेषु) मनुष्यसमाजके बैठने योग्य स्थानोंमें अर्थात

ब्रह्मयज्ञोंमें (युजम्) जुडनेवाले मनको (वज्रं) वज्रवत् कठोर (नु) शीघ्र ही (प्राशत) प्रकर्षतासे करते हैं ॥७॥

तुलना— गीतामें कहा कि रागद्वेषका परित्याग, मनको स्वाधीन करके शरीरयात्रामात्रके लिये भोजनादि विषयोंका व्यवहार करनेवाला मनुष्य मनकी स्वच्छताको प्राप्त कर सकता है। वेदमें भी आत्मामें विषयोंका अप्रवेश कराना, शरीरनिर्वाह मात्रके लिये रूपरसादिका ग्रहण करना भगवत्स्तुति करना और मनको वज्रकी तरह कठोर करके ब्रह्मयज्ञोंमें प्रवृत्त होना बताया है।

तथा च उपनिषद्में—

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयंते ॥ (कठो. २।१।२)

अर्थ- दृष्टाऽदृष्ट सूक्ष्म और स्थूल नानाप्रकारके भोगोंकी तृष्णासे प्रतिबद्ध हुए हुए आत्मदर्शनवाले अर्थात् जो तृष्णासे मारे मारे आत्मानन्द अमृतको भूले हुए (बालाः) अज्ञानी प्राणी (कामान् अनुयन्ति) तृष्णाके वश हो जाते हैं, वे अविद्याके वशमें हुए हुए अविद्याकृत काम्य कर्मोंके फंदेमें फंसे हुए मृत्युको पाते हैं अर्थात् नाश हो जाते हैं। इसलिये धैर्यवाले विवेकी पुरुष (अमृतत्वम्) भगवत्स्वरूपको (ध्रुवं विदित्वा) निश्चय और अविनाशी जानकर (अध्रुवेषु इह) इस संसारमें नाशवान् सुखों को (न प्रार्थयन्ते) नहीं चाहते ॥२॥

(६५) प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥
(भगव. २, श्लो. ६५)

अर्थ- (प्रसादे) प्रसन्नतायुक्त मनकी स्वच्छता प्राप्त होनेमें (अस्य) इस विवेकी पुरुषके (सर्वदुःखानाम्) सर्व प्रकारके दुःखोंकी (हानिः) हानि (उपजायते) हो जाती है। (हि) जिस कारण (प्रसन्नचेतसः) प्रसन्नचित्तवालेकी (बुद्धिः) बुद्धि (आशु) बहुत शीघ्र ही (पर्यवतिष्ठते) दृढ हो जाती है अर्थात् आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जाती है ॥६५॥

वेदगीता (मंत्रः)

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥
(अथर्व. १९।२७।८)

अर्थ- (जीव!) हे जीवात्मन्! तू (आयुष्कृताम्) तपसे और मनकी स्थिरतादिसे दीर्घ बनानेवाले तपस्वियोंके (आयुषा) आयुः जैसी आयुसे (जीव) सब दुःखोंको दूर करके प्रसन्नचित्त हुआ हुआ जीवित रह। (मा मृथाः) इन्द्रियोंका दास होकर मत मर, (आयुष्मान् जीव) आयुसे सम्पन्न, प्रसन्नचित्त हुआ हुआ दीर्घायु होकर जीवित रह। (आत्मन्वताम्) आत्मज्ञानियों के (प्राणेन) प्राणबलसे तू (जीव) प्राण धारण कर जैसे स्थिरात्मा इन्द्रियोंके विषयोंमें लालच न करते हुए जीवन धारण करते हैं वैसे तू भी शरीरनिर्वाहके लिये जीवित रह। (मृत्योः)रागद्वेषमें बंधे हुए इन्द्रियोंके विषयोंमें लोलुप हुए पुरुषोंको मारनेवाली मृत्युके (वशम्) अधीन (मा उदगाः) मत प्राप्त हो अर्थात् इन्द्रियोंके वशमें होकर वृथा मत मर ॥८॥

तुलना- गीतामें बताया कि मनकी प्रसन्नताकी दुःखोंकी हानिका कारण है प्रसन्नचित्तकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर हो जाती है। वेदमें भी तपस्वी जीवनसे दीर्घायु होती है, मनको वश करनेवाला पुरुष मृत्युके वशमें नहीं पडता, प्रत्युत मुक्त हो जाता है, ऐसा कहा है।

(६६) नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ६६)

अर्थ— (अयुक्तस्य) प्रसन्नताके न होनेसे असावधानचित्तवाले पुरुषकी (बुद्धि) आत्मतत्त्वकी ग्रहण करनेवाली बुद्धि (न अस्ति) नहीं होती (च) और ऐसे (अयुक्तस्य) चंचल चित्तवाले प्राणीकी (भावना) आत्मतत्त्वकी भावना अर्थात् आत्मतत्त्वका अभिनिवेश (न) नहीं होता (च) और (अभावयतः) आत्मतत्त्वकी भावनासे रहित पुरुषको (शान्तिः) शान्ति भी (न) नहीं होती। (अशान्तस्य) शान्तिसे रहित पुरुषको (सुखं) मोक्षका सुख (कुतः) कहांसे प्राप्त हो सकता है? अर्थात् उसे मोक्षका सुख प्राप्त नहीं होता ॥६६॥

वेदगीता (मंत्रः)

यन्मे छिद्रं चक्षुषः हृदयस्य× मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ (वा. य. ३६।२)

× हृदय शब्दसे यहां बुद्धिका अर्थ प्राप्त है, क्योंकि मंत्रमें " मनसः " मनस् शब्दका पाठ भिन्न दिया हुआ है।

अर्थ- (मे) योगमें न समाहित चित्तवाले मेरी (चक्षुषः) चक्षुरिन्द्रियका अर्थात् चक्षुरिन्द्रियजन्य ब्रह्माकार-वृत्तिके न देखनेका (छिद्रम्) जो दोष है और मुझ असमाहित चित्तके (हृदयस्य) बुद्धिका (छिद्रं) जो दोष है अर्थात् ब्रह्मविवेचनात्मक शक्तिका जो अभाव है और (मनसः) अन्तःकरण अर्थात् चित्तका जो दोष है, (वा) और (अतितृण्णाम्) दूसरेको शारीरिक, मानसिक, वाचिक, अतिदुःखात्म-हिंसावाले दोषको (बृहस्पतिः) वेदज्ञानका पति ईश्वर अथवा सबसे बडे आकाशादिका पति ईश्वर, यद्वा (बृहस्पतिः) ज्ञानी पुरुष (तत्) उन इन्द्रियदोषोंको (दधातु) पूर्ण करे अर्थात् मुझमें कोई त्रुटि या कोई दोष न दे। (यः) जो परमेश्वर (भुवनस्य) समग्र संसारका (पतिः) रक्षक है, वहही (नः) हम मुमुक्षु जीवोंकोही (शम्) कल्याणकारी (भवतु) प्राप्त होवे।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम। विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥

(अथर्व. १९।४०।१)

अर्थ— (मे) योगसमाधिमें असावधान चित्तवाले मेरे (मनसः) मनका (यत्) जो (छिद्रम्) दोष या त्रुटि है और (यत्) जो (वाचः) वाणीका (छिद्रं) दोष है अबके (मे) मेरी (सरस्वती) सरस्वती वाणी (मन्युमन्तम्) क्रोधवाले पुरुषको (जगाम) प्राप्त होवे, (तद्) तब उस दोषको (विश्वैः देवैः सह) समस्त विद्वानों योगी पुरुषोंके साथ (संविदानः) विचार करता हुआ (बृहस्पतिः) वेदवाणीका पालक विद्वान् पुरुष (सं दधातु) उस छिद्रको या त्रुटिको पूर्ण करे। मानसिक त्रुटिको और वाणीकी त्रुटिको और यदि कोई व्यक्ति क्रोधमें कुछ कहता हो तो उसके दोषको विद्वान् पुरुष मिलकर विचारें और उस त्रुटिको दूर करें। नहीं तो दूषित पुरुषको शान्ति कभी न होगी और नाही कभी सुख प्राप्त होगा। तथा च उपनिषद्में—

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति, नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन ॥

(बृहदा. २।४।२)

अर्थ— उस मैत्रेयी याज्ञवल्क्यकी स्त्रीने पूछा, 'हे भगवन्! यह जो मेरा ऐश्वर्य सारी पृथिवी इत्यादि वित्तसे पूर्ण है, इससे किस प्रकार मैं अमृतत्व अर्थात् मोक्षको प्राप्त होऊंगी?' तब याज्ञवल्क्यने कहा कि "नेति," नहीं, तू इस वित्तसे मोक्षको प्राप्त नहीं हो सकती। जैसे धनसे सुखसामग्रियोंको जमा करनेवालोंका जीवन होता है, ऐसे तेरा जीवन भी होगा। इस धनसे मोक्षानन्दरूप अमृत अर्थात् आत्मसुखकी प्राप्ति नहीं कर सकती।" और वैसे योगवासिष्ठमें भी कहा है—

यान्येतानि दुरन्तानि दुर्जराण्युन्नतानि च।
तृष्णावल्ल्याः फलानीह तानि दुःखानि राघव ॥१
इच्छोदयो यथा दुःखमिच्छाशान्तिर्यथासुखम्।
तथा न नरके नाऽपि ब्रह्मलोकेऽनुभूयते ॥ २ ॥
यावती यावती जन्तोरिच्छोदेति यथा यथा।
तावती तावती दुःखबीजमुष्टिः प्ररोहति ॥३॥

अर्थ- हे राघव! हे श्रीरामचंद्रजी! ये जो बडे, अन्तसे रहित, दुर्जेर अर्थात् भोगनेमें कठोर और बडे विशाल, तृष्णारूप बेल (वल्ली) के फल हैं वेही दुःख कहे जाते हैं। इस इच्छाके उदय होनेका जैसा दुःख है और इसी इच्छाकी शान्तिका जैसा सुख है, वैसा दुःख नरकमें भी नहीं भोगा जाता और न वैसा सुख ब्रह्मलोकमें भोगा जाता है! अर्थात् तृष्णाकी वृद्धि नरकसे भी अधिक दुःखदायिनी है और तृष्णाका नाश ब्रह्मलोकके सुखसे भी अधिक सुखदायी है। जैसे जैसे जितना जितना जीवोंके हृदयमें इच्छाका उदय हो जाता है, उतना उतना दुःखके बीजकी (मुष्टि) मूठ बढती चली जाती है अर्थात् जहां शान्तिका उदय नहीं, वहां आत्माका सुख भी नहीं है।

तुलना- गीतामें " असावधान चित्तवालेकी विवेचनात्मक बुद्धिका ठिकाना नहीं रहता, नांही आत्मतत्त्वविवेचन रहता है। आत्मविवेचनसे रहितको शान्ति नहीं होती और अशान्तिसे सुख नहीं होता" यह सिद्ध किया है। वेदमें भी विवेचनात्मक बुद्धिदोष, मन और वाणी आदिके दूषित होनेसे अशांति होती है और अशान्तिसे दुःख उत्पन्न होता है, यह बताया है।

(६७) इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ६७)

अर्थ- (हि) जिस कारणसे (चरताम्) अपने अपने विषय-की ओर वर्तमान होनेवाली (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्रादि इन्द्रियोंके मध्यमेंसे (यत्) जिस एक इन्द्रियके साथ (मनः) यह मन (अनुविधीयते) चल पड़ता है अर्थात् जिस इन्द्रियकी आज्ञामें यह मन उसके विषयकी ओर झुकता है, (तत्) वही इन्द्रिय (अस्य) इस असमाहित चित्तवाले पुरुषकी (प्रज्ञाम्) आत्मतत्त्वके ग्रहण करनेवाली बुद्धिको (हरति) ऐसे हर लेता है (इव) जैसे (अंभसि) जलमें (नावम्) नौकाको (वायुः) प्रचण्ड पवन घसीट ले जाता है ॥६७॥

वेदगीता (मंत्रः)

मनसा संकल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥

(अथर्व. १२।४।३१)

अर्थ- इन्द्रियाधीन पुरुष (मनसा) मनसे (संकल्पयति) संकल्प करता है अर्थात् जिस काम करनेकी इच्छा करता है, (तद्) वही संकल्प (देवान्) अपने अपने रूपरसादि विषयोंसे प्रकाशमान चक्षु आदि इन्द्रियोंको (अपि) ही (गच्छति) प्राप्त होता है (ततः) उस मनसे ऐसा व्यवहार करनेके बाद (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष उस मनको (वशाम्) वश करनेको (उपप्रयन्ति) प्राप्त होते हैं। यथा—

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥

(अथर्व. ६।४१।१)

अर्थ- (मनसे) अच्छे ज्ञानके साधन मनके लिये (चेतसे) चेतनसत्ताकी प्राप्तिके लिये (धिये) विवेचनात्मक बुद्धिके लिये (आकूतये) सदसद्विवेकात्मक संकल्पके लिये (उत) और (चित्तये) अतीतादि विषयोंकी स्मृतिके लिये (मत्यै) आगामि विषयज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली मतिके लिये (श्रुताय) श्रवण-जनित ज्ञानके लिये (चक्षसे) चाक्षुष ज्ञानके लिये (वयं) हम (हविषा) दान, यज्ञादिसे (विधेम) अपने सांसारिक व्यवहार को करें ॥ १ ॥

तुलना- गीतामें मनका सम्बन्ध जिस इन्द्रियके साथ होता है उसी इन्द्रियको अपनी तरफ खेंच लेता है अर्थात् वह सांसारिक पदार्थोंके ग्रहण करनेकी उलझनमें लगा रहता है, यही बताया है। वेदमें भी मनका संकल्प ही दूसरी इन्द्रियोंको अपनी ओर खेंचता है। परन्तु ज्ञानी जन सांसारिक मनको अपने वश में करनेका प्रयत्न करते हैं, यही बताया है।

(६८) तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(भगव. अ. २, श्लो. ६८)

अर्थ- (महाबाहो !) हे विशाल बाहुवाले अर्जुन ! एक इन्द्रियकी प्रबलतासे भी प्रज्ञा नष्ट हो जाती है (तस्मात्) इस-लिये (यस्य) जिस साधककी (सर्वशः) सब प्रकार (इन्द्रियाणि) सब इन्द्रियाँ अपने अपने (इन्द्रियार्थेभ्यः) इन्द्रियोंके विषयोंसे (निगृहीतानि) वशीभूत हो गई हैं, (तस्य) उसी सिद्ध या साधक की (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थितिवाली अर्थात् गौरववाली हो जाती है ॥६८॥

वेदगीता (मंत्रः)

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार
तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयं
सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

(सा. १८२६, ऋ. ५।४४।१४)

अर्थ— (यः) जो स्थिरबुद्धि पुरुष (जागार) इंद्रियों के विषयोंसे बचनेके लिये जागरणशील है अर्थात् इंद्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें फंसनेसे बचनेके लिये प्रमाद नहीं करता, (तम्) उसी पुरुषको (ऋचः) सदसद्विवेचनात्मिक वाणियाँ अथवा बुद्धियाँ (कामयन्ते) चाहती हैं अर्थात् विवेचनात्मक बुद्धियाँ उसे स्वयं प्राप्त होती हैं। (यः) जो स्थिरबुद्धि पुरुष (जागार) इंद्रियोंको अपने वशमें करनेके लिये जागता है (तम्+उ) उस पुरुषको ही (सामानि) इंद्रियोंके विषयों-की प्राप्तिके हटानेवाली शान्तियाँ (यन्ति) प्राप्त होती हैं। (यः) जो ज्ञानी पुरुष (जागार) सब प्रकारसे विषयोंका ग्रहण न करनेके लिये जागता रहता है, (अयं सोमः×) यह मन (तम्) उसी स्थिरबुद्धि पुरुषको (आह) कहता है, हे स्थिरबुद्धि जीवात्मन् ! (तव) सांसारिक विषयोंसे हर तरहसे दूर रहने-

× सोम नाम चंद्रमाका है, चंद्रमा मनका नाम है, यथा 'चंद्रमाः मनसो जातः ।'

वाले तेरे (सख्ये) मित्रता अर्थात् समान स्थितिमें (नि+ओकः) नियतस्थ अर्थात् तेरे साथ नियत वास करनेवाला (अहम् अस्मि) मैं हूं। अर्थात् जिसकी इंद्रियें अपने वशमें होती हैं, मन भी उसके वशमें अवश्य रहता है। यथा च—

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ (प्रश्नोप. ४।९)

अर्थ- यह आत्मा स्वयं देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला सुननेवाला, सूंघनेवाला, रस लेनेवाला, बोध करनेवाला और सब कर्मोंके करनेवाला विज्ञानस्वरूप आत्मा है। वह परम अविनाशी स्वरूप परमात्माहीमें प्रतिष्ठित है। इसी पूर्व मंत्रका उत्तर द्वितीय मंत्रमें दिया गया है।

+ अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति। अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥ (साम. १८२७, ऋ. ५।४४।१५)

तुलना— गीतामें इंद्रियोंको वशमें रखना, उनके विषयोंमें न फंसना यह स्थिरबुद्धि होनेका मूल कारण है स्थिरबुद्धि होनेसे मुक्त हो सकता है अन्यथा नहीं, यह बताया। वेदमें इंद्रियोंके विषयोंमें न फंसनेसे शान्ति प्राप्त होती है। शान्त पुरुषका मन स्वयमेव आत्माके वशमें हो जाता है, जिससे स्थिरबुद्धि होनेसे मुक्तिका अधिकारी हो जाता है।

(६९) या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ (भगव. अ. २, श्लो. ६९)

अर्थ- (सर्वभूतानाम्) सर्वसाधारण प्राणियोंके लिये (या) जो (निशा) रात्रि अर्थात् लौकिक व्यवहारसे निवृत्तिका समय और शयनकालका समय है, (तस्याम्) उसी समय (संयमी) अपने इंद्रियोंको अपने मनसहित वश करनेवाला यति (जागर्ति) जागता रहता है अर्थात् वह समय यतिके लिये दिन होता है। और इसके प्रतिकूल (यस्याम्) अविद्यारूप रात्रिमें अर्थात् लौकिक व्यवहार-प्रवृत्तिके समय दिनमें (भूतानि) सर्वसाधारण प्राणी (जाग्रति) जागते हैं, (सा) वह समय (पश्यतः) द्रष्टा, दर्शन, दृश्यादि सबको ब्रह्माकारवृत्तिसे देखते हुए ब्रह्मनिष्ठ (मुनेः) मुनिकी (निशा) महा अन्धकारमयी क्लेश देनेवाली रात्रि है। अर्थात् मायाग्रस्त प्राणियोंका जो दिन है, वह यतिके लिये रात्रि है और मायाग्रस्त प्राणियोंकी जो रात्रि है, वह यतियोंका दिन होता है॥६९॥

वेदगीता (मंत्रः)

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते। न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ (अथर्व. ११।४।२५)

अर्थ— (ऊर्ध्वः) अविद्याको छोडकर ब्रह्मप्राप्तिके लिये उठा हुआ संयमी (सुप्तेषु) लौकिक व्यवहारसे निवृत्त होकर सर्वसाधारण जीवोंके रात्रिके समय सो जानेपर (जागार) जागता रहता है अर्थात् वह समय यतिके लिये दिन होता है। अर्थात् ब्रह्मध्यानमें लगानेके कारण जागता रहता है। (ननु) क्योंकि साधारण प्राणी लौकिक व्यवहारसे छूटकर सो जानेसे (तिर्यङ्) घोर निद्राऽवस्थामें प्राप्त होनेसे मूढाऽवस्थाको प्राप्त हुआ (निपद्यते) नीचे गिर जाता है। (सुप्तेषु) साधारण प्राणियोंके दिनमें भी सो जानेपर अर्थात् मायामोहमें पड जानेपर भी (अस्य) इस संयमी ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके (सुप्तम्) सो जानेको अर्थात् लौकिक व्यवहारसे विरक्त होनेको मोह-निद्राकी प्राप्तिको (कश्चन) कोई साधारण प्राणी या असाधारण प्राणी (न) नहीं (अनुशुश्राव) सुनता। अर्थात् सारे संसारके प्राणियोंके जागनेके समय ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकी रात्रि होती है और उनकी रात्रि इनका दिन होता है॥२५॥ यथा च उपनिषद्में—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया ॥ (प्रश्नो. १।१६)

अर्थ— जिन पुरुषोंमें (जिह्म) कुटिल भाव (अनृतं) झूट मायाका प्रवेश नहीं है, उन पुरुषोंके लिये यही लोक (विरजः) निर्मल ब्रह्मलोक है। अतः जो संसारियोंका दिन है, वह मुनियोंकी रात्रि है, जो मुनियोंकी रात्रि है, वह संसारियों का दिन है।

+ इस मंत्रमें 'अग्नि' शब्द जीवात्माका वाचक है न कि भौतिक अग्निका और नाही परमात्माका वाचक है।

तुलना– गीतामें जीवोंकी मोहाऽवस्था संयमियोंकी जाग्रताऽवस्था कही है। और समस्त जीवोंकी जाग्रताऽवस्थाको संयमियोंकी शयनाऽवस्था कही है। अर्थात् संयमी रात्रिमें ब्रह्मध्यान में मग्न होनेसे जागते रहते हैं। दिनमें संसारी सांसारिक पदार्थों में मस्त रहते हैं। संयमी पदार्थोंमें शयनावस्था मोहाभाव दिखानेसे रात्रिवत् व्यवहार करते हैं यह बताया। वेदमें भी ज्ञानी पुरुषका जागरण बताया और संसारीकी शयनाऽवस्था अर्थात् मूढाऽवस्था होती है, ऐसा बताया।

(७०) आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(भगव. अ. २, श्लो. ७०)

अर्थ– (यद्वत्) जिस प्रकार (आपः) भिन्न भिन्न देशोंसे जल एकत्रित होकर गंगा सिंधु आदि नामको धारण करनेवाली नदियोंके जल (आपूर्यमाणम्) चारों ओर जलसे पूर्ण (अचलप्रतिष्ठम्) स्थिर मर्यादावाले (समुद्रम्) सागरमें (प्रविशन्ति) प्रवेश कर जाते हैं, (तद्वत्) इसी प्रकार (यम्) जिस महापुरुषमें (सर्वे) सब (कामाः) कामनायें बिना बुलाये अपनेआप ही (प्रविशन्ति) प्रवेश कर जाती हैं, (सः) वही (शान्तिम्) परम शान्तिको (आप्नोति) प्राप्त करता है। (तु) परन्तु (कामकामी) कामना करनेवाला (न) शान्ति अर्थात् मोक्षपदको प्राप्त नहीं करता। अर्थात् जो प्राणी नानाप्रकारके विषयभोगोंकी इच्छा करता रहता है, उसे कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती ॥७०॥

वेदगीता (मंत्रः)

प॒रा हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒× वस्य॑ इष्टये।
व॒यो न व॑स॒तीरुप॑* ॥ (ऋ १।२५।४)

अर्थ– हे परमात्मन्! (मे) मुझ मुमुक्षु जीवात्माकी (वि+मन्यवः) क्रोधरहित बुद्धियाँ और तुझसे उत्पन्न हुई हुई सब कामनायें (वस्यः) अत्यन्त, वास अर्थात् जीवनकी (इष्टये) प्राप्तिके लिये (परा+पतन्ति) मुझसे विमुख होकर दूसरी ओर जाती हैं अर्थात् सब कामनायें मुझसे दूर हो गई हैं। ऐसे दूर हो गई है (न) जैसे (वयः) पक्षी (वसतीः) अपने निवासस्थानको रात्रिको शान्तिसे व्यतीत करनेके लिये (उप पतति) समीपता प्राप्त होती है, ऐसे मेरी कामनायें इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त हो गई हैं। यद्वा—

आ त्वा॑ विश॒न्त्विन्द॑वः समु॒द्रमि॑व॒ सिन्ध॑वः।
न त्वामि॒न्द्राति॑ रिच्यते॥

(ऋ. ८।८१।२२; साम. १६६०)

अर्थ– हे जीवात्मन्! (इन्दवः) [इन्दुः आदित्यः इन्दुः। आत्मा। निरुक्तपरि. अध्या. २] आत्मसम्बन्धी कामनायें (त्वा–त्वाम्) तुझ मुमुक्षु जीवात्मामें (आ+विशन्तु) सब ओरसे आकर अपने नामरूपको छोडकर लीन हो जावें। (सिन्धवः) भिन्न भिन्न देशोंसे जल एकत्रित होकर गंगा सिन्धु आदि नामको धारण करनेवाली नदियोंके जल (समद्रम् इव) जैसे समुद्रमें नामरूपको छोडकर प्रवेश कर जाते हैं। हे जीवात्मन्! तव (त्वाम्) तुझसे कोई भी जीवात्मा (न+अतिरिच्यते) अधिक श्रेष्ठ अथवा अधिक शान्त नहीं होता। और जैसे उपनिषद्में कहा है—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जा-
यते तत्र तत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु
इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥ (मुण्ड. ३।२।२)
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति
नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ (मुण्डक. ३।१।८)

अर्थ– जो जीवात्मा जिन जिन सांसारिक कामनाओंको (कामयते) कामना करता है, (सः) वही जीवात्मा (मन्यमानः) अपने आपको उस कामनाका स्वरूप मानता हुआ उस उस कामनावाले स्थानोंमें अथवा उस उस जन्ममें (कामभिः) कामनाओंके साथ (जायते) जन्म लेता है (पर्याप्तकामस्य) परिपूर्ण कामनावाले अर्थात् जिसकी सब कामनायें पूरी हो चुकी हैं, शेष कोई कामना नहीं रहती, ऐसे (कृतात्मनः) मनको वशमें रखनेवाली पुरुषकी (सर्वे कामाः) सब कामनायें (इह+एव) इस जन्ममें ही (प्रविलीयन्ति) लीन हो जाती हैं अर्थात् फिर कामनायें पैदा नहीं होतीं॥ (यथा) जैसे (स्यन्दमानाः) बहती हुई नदियाँ (नामरूपे) गंगादि नाम श्वेतश्यामादि रूपोंको (विहाय) छोडकर (समुद्रे) समुद्रमें (अस्तं गच्छन्ति) लीन

× वस्यः= वसुमच्छब्दात् "विन्मतोर्लुक्" इति मतुपो लुकि टिलोप इयुसनो यकारलोपश्छान्दसः।
* वसतीः "शतुरनुम इति ङीप्."

हो जाती है। (तथा) वैसे (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष निष्काम हुआ हुआ (नामरूपात् विमुक्तः) गंगादत्त, हरिदत्तादि नामोंसे तथा गौर, श्यामादि रूपोंसे रहित हुआ हुआ (परात्+परम्) परसे परे (दिव्यम्) ज्योतिःस्वरूप (पुरुषम्) परब्रह्मको (उपैति) प्राप्त होता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥

तुलना- गीतामें कामनासे रहित पुरुष मुक्त हो जाता है जैसे सब जल समुद्रमें समा जाते हैं ऐसे कामनासे रहित पुरुषकी कामना बताई है उपनिषद् और वेदमें भी नदियोंका समुद्रमें समा जानेका दृष्टान्त देकर कामनाओंसे रहित पुरुषकी मुक्ति बताई है अर्थात् कामना-परित्यागके विना मुक्ति नहीं पा सकता।

(७१) विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(भगव. अ. २, श्लो. ७१)

अर्थ— (यः) जो (पुमान्) पुरुष (सर्वान्) प्राप्त और अप्राप्त, सब प्रकारकी (कामान्) कामनाओंको (विहाय) छोडकर (निःस्पृहः) अपने शरीरके जीवित रहनेकी भी अभिलाषासे तथा सुखकी वृद्धिकी इच्छासे रहित (निर्ममः) भोगोंको भोगते हुए भी उनकी ममतासे रहित हुआ हुआ (निरहंकारः) सर्व प्रकारके अहंकारसे शून्य हुआ हुआ (चरति) आनन्दपूर्वक संसारयात्रा करता है। (सः) वही पुरुष (शान्तिम्) शान्तिको अर्थात् निर्वाण पदवीको प्राप्त होता है ॥७१॥

वेदगीता (मंत्रः)

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥
(अथर्व. १०।८।४४)

अर्थ- जो पुरुष (अकामः) प्राप्त अथवा अप्राप्त सब प्रकारकी कामनाओंसे रहित अर्थात् लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणासे अतीत हो चुका है, (धीरः) ज्ञानवान्, ध्यानवान् और धारणावान्, (अमृतः) अमृतस्वरूप, अविनाशी (स्वयंभूः) अजन्मा, अपने आत्मामें आप रमण करनेवाला (रसेन§) ब्रह्मानन्दके रससे (तृप्तः) तृप्त हुआ हुआ (कुतश्चन) किसी प्रकार भी और कहींसे भी (न+ऊनः) न्यून नहीं है अर्थात् जो सर्वथा सब ओरसे परिपूर्ण है, (तम्) उस (धीरम्) धीर और (अजरम्) अजर और अमर (युवानम्) नित्य तरुण (आत्मानम्) आत्माको (एव) ही (विद्वान्) जानता हुआ पुरुष (मृत्योः) मौतसे (न बिभाय) नहीं डरता। यथा च उपनिषद्में कहा—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।
(छांदोग्य. ७।२३।१)

अर्थ- जो, भूमा× है उससे बढकर कोई दूसरा नहीं, वह ही सब सुखोंसे श्रेष्ठ परमानन्द सुख है। उसके जो नीचे है वह 'अल्प' है अर्थात् थोडा है। उस 'अल्प' में सुख नहीं है। अल्प अर्थात् विषयानन्दमें तृष्णाके कारण थोडेही कालतक सुखका अनुभव होता है, उससे शान्ति नहीं होती, दुःखही दुःख होता है।

तुलना- गीतामें मनुष्य कामनाओंको मलमूत्रके समान त्याग कर निरहंकार होकर जब आत्मानन्दके रसमें तृप्त होता है, तब उसे शान्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है, यह बताया है। वेदमें भी निष्काम, धैर्ययुक्त, अमर, स्वयंभू ब्रह्मानन्द-रससे सन्तुष्ट होनेवाला कहीं भी न्यून नहीं होता अर्थात् सर्वत्र परिपूर्णकाम विचरता है। ब्रह्मानन्द रसको यथावत् उपभोग करनेसे मृत्युका भय दूर हो जाता है क्योंकि यही आत्मा, अजर, अमर, नित्य तरुण है। यह बात अच्छी तरह जान लेनेसे मनुष्य शान्तिको अर्थात् मुक्तिको प्राप्त होता है।

(७२) एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ (भगव. अ. २, श्लो. ७२)

अर्थ- हे (पार्थ !) हे पृथाका पुत्र अर्जुन ! (एषा) स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणके प्रसंगसे कही हुई (ब्राह्मी) ब्रह्मज्ञान करानेवाली (स्थिति) निष्ठा मैंने कही है। (एनाम्) इस ब्रह्म-

§ रसेन " रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" उपनिषद्

× भूमा=आत्मसुखको कहते हैं। जिसकी प्राप्ति होनेसे आत्मज्ञानी अन्य किसी वस्तुको न देखता है और न सुनता है और न जानता है। क्योंकि निष्काम, निर्मम, निरहंकार होनेसे आत्मतत्त्वके रसके बिना अन्य किसी वस्तुपर दृष्टि नहीं जाती सर्वत्र आत्मानन्दको ही देखता है।

निष्ठाको (प्राप्य) प्राप्त करके शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष (न विमुह्यति) मोहको प्राप्त नहीं होता। बल्कि (अन्तकाले) वृद्धावस्थामें अथवा मृत्युके समय क्षणमात्रमें (अपि) भी (अस्याम्) इस ब्रह्मनिष्ठामें (स्थित्वा) स्थिर होकर (ब्रह्म-निर्वाणम्) ब्रह्मनिर्वाणपदवी अर्थात् मोक्षके सुखको (ऋच्छति) प्राप्त होता है।

वेदगीता (मंत्रः)

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम
आ ज्योतिरेति। आरैक् पन्थां यातवे
सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥

(ऋ. १।११३।१६)

अर्थ- ऐ मनुष्यो! (उदीर्ध्वम् +) सांसारिक मोहनिद्राको छोडकर खडे हो जाओ अर्थात् तुम सब कामनाओंका परित्याग करके ब्रह्मस्थिति या स्थिरप्रज्ञताके लिये खडे हो जाओ! (नः) हमारा (जीवः) जीवात्मा (असुः=अस् सत्तायाम् औणादि कः उ प्रत्ययः) ब्रह्मनिष्ठावाला यद्वा शरीरयात्रा मात्रके लिये प्रेरित हुआ हुआ (आ+अगात्) सब संकल्पोंको मिटाकर आगया है अर्थात् जो आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंमें फंसनेसे उनसे पृथक् नहीं होता था, अब इंद्रियोंके विषयोंसे पृथक् होकर आगया है। (तमः) मोह और अज्ञान (अप+प्रागात्) अत्यन्त अच्छी-तरहसे भाग गये है अर्थात् मोह और अज्ञानके निवृत्त होनेसे अब शुद्धात्माही प्रतीत होता है। जब ऐसी अवस्था हो जाती है तब यह जीवात्मा (ज्योतिः) ब्रह्मानन्दके प्रकाशको (आ+एति) चारों ओरसे प्राप्त हो जाता है। (सूर्याय+सूर्यस्य विभक्तिव्यत्ययः) यह जीवात्मा जगत्के उत्पन्न करनेवाले यद्वा जगत्को प्रकाशित करनेवाले यद्वा चराचर जगत्को अपने अपने व्यापारके लिये प्रेरित करनेवाले परब्रह्म परमात्माके (पन्थाम् ×) मार्गको अर्थात् ब्रह्मनिर्वाणपदवीको (यातवे) प्राप्त होनेके लिये (आरैक्*) प्रत्यक्षतया प्रकट कर लेता है। अगन्म ÷) हम उस देशमें प्राप्त होवें (यत्र) जिस स्थान पर (आयुः) अपनी समभावस्थाको (प्रतिरन्ते) उन्नतिकी ओर बढते हैं अर्थात् ब्रह्मानन्दधाममें स्थित होकर वंहांही प्रतिक्षण ब्रह्मानन्दके रसको पीते हुए अपने ब्रह्मानन्दके जीवनको बढाते हैं। +

जैसे गौडपादीय कारिका प्रक. ३ श्लो. १२६ में कहा है—

स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम्।
अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते॥

अर्थ— जो स्वरूपमें स्थित, शान्त, निर्वाण और अकथनीय सुख है, वही सुखोंमें उत्तम सुख कहलाता है। यह ब्रह्मानन्द-सुख जो आत्मस्वरूप होनेसे अज है अर्थात् अजन्मा है, वह अजसे अर्थात् आत्माहीसे जाना जाता है। इसी कारण इसे सर्वज्ञ कहते हैं।

अथ द्वितीयाऽध्यायका सारांश पाठकोंके लिये कहता हूं—

शरीरं नश्वरं ज्ञेयमात्मा नित्योऽजरोऽमरः।
देहे नष्टे न नाशोऽस्य मोहोऽतोऽस्य निरर्थकः॥१
सांख्ययोगसमाधानं सत्त्वशुद्धिस्तथैव च।
ज्ञानं तस्य फलं मोक्षः निष्कामकर्मशिक्षणम्॥२
स्थिरप्रज्ञा फलं शान्तिः इमे सर्वे पृथक् पृथक्।
द्वितीयेऽस्मिन्नध्याये श्रीकृष्णेननिरूपिताः॥३॥

अर्थ- इस दूसरे अध्यायमें भगवद्गीता और वेदमें शरीर नाशवान् जानना चाहिये (१), आत्मा नित्य अजर और अमर है (२), देहके नाश होनेपर इस आत्माका नाश नहीं होता (३), इस लिये इन शरीरोंका मोह करना व्यर्थ है (४), सांख्य और कर्म-योगका वर्णन मनकी शुद्धि (५), ब्रह्मज्ञान प्राप्ति (६), इस ब्रह्मज्ञान का फल मोक्ष (७) और निष्काम कर्मका उपदेश (८), स्थिर-प्रज्ञ होना (९); और उसका फल शान्ति (१०); यह सब विषय पृथक् पृथक् करके भगवान् श्रीकृष्णने बतलाये हैं॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु सांख्य-योगो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥

इति श्रीसारस्वतान्वयलैयाग्रामवास्तव्यन्यायभूषण-जगन्नाथशास्त्रि-कृतायां गीतावेदार्थबोधिन्यां वेदगीता-हिन्दीभाषाटीकायां

प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥१॥

× ईर्ध्वम्-ईर् गतौ। * औरक्= रिचिर विरेचने लङि ' बहुलं छन्दसीति ' विकरणस्य लुक् गुणे व्यत्ययेनैत्वम्। × पन्थाम् ' द्वितीयामपि पथिमथ्यृभुक्षामात् ' इति व्यत्ययेन आत्वम्। ÷ अगन्म- गमेः लङि " बहुलं छन्दसीति " विकरणस्य लुक् " म्वोश्च " इति सूत्रेण मकारस्य नकारः॥

अथ भगवद्गीतायाः तृतीयोऽध्यायारंभः ।

वेदगीतायाः द्वितीयोऽध्यायारंभः ।

(१)ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।×
तत्किं कर्माणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥
(भगव. अ. ३, श्लो.१)

अर्थ– हे (जनार्दन!) [सब जीवोंसे अपनी अपनी अभिलाषा जिससे याचना की जाती है उसे जनार्दन कहते हैं] हे श्रीकृष्ण ! (चेत्) यदि (कर्मणः) कर्मयोगसे (बुद्धिः) ज्ञानयोग (ज्यायसी) बहुत ही श्रेष्ठ है ऐसा (ते मता) तुमसे माना जाता है, (तत्) तब (केशव !) हे कृष्ण ! तुम (माम्) मुझ अल्पबुद्धिको (घोरे) ऐसे बन्धुओंकी हिंसारूप घोर (कर्मणि) कर्ममें (किम्) क्यों (नियोजयसि) प्रेरणा करते हो? अर्थात् जब कर्मयोगसे ज्ञानयोग श्रेष्ठ मानते हो तो क्यों मुझे फिर कर्ममें प्रवृत्त होने की आज्ञा देते हो ॥१॥

वेदगीता (मंत्रः)

यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तीभिश्चकृमा कच्चिदागः । कृधी ष्वऽस्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ (ऋ. ४।१२।४.; तै. सं. ४,७,१५,३)

अर्थ– हे (अग्ने !) हे पापदहन-शक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! हे (यविष्ठ !) हे नित्य सबल तरुण यद्वा सबमें व्यापक ! (यत् चित् हि) जो कुछ ही (ते) तेरे (पुरुषत्रा) दास पुरुषोंमें (अचित्तिभिः) अहंता ममता आदि मोहसे परिपूर्ण अज्ञानतासे (कच्चित्) कभी कोई (आगः) अपराध (चकृम) हम करें । तब (अस्मान्) हम अज्ञानियोंको (अदितेः) पृथिवीपर (अनागान्) पापरहित (सु) अच्छी तरहसे (कृधि) कर, अर्थात् हे परमात्मन् हमें इस पापात्मक घोर कर्मसे निकाल कर ज्ञानयोगमें लगा । (विष्वक्) चारों ओर विद्यमान (एनांसि) मुझसे किये हुए, किये जाय हुए, किये जानेवाले पापोंको (वि+शिश्रथः) शिथिल कर अर्थात् इस सांसारिक घोर संग्रामात्मक पापसे वियुक्त कर॥४॥

तुलना– गीतामें अर्जुनने ज्ञानयोग और कर्मयोगका उपदेश सुनकर भगवान् कृष्णसे इस द्विविधासे निकलनेके लिये प्रार्थना की है– हे भगवन् ! मुझे श्रेष्ठ ज्ञानयोगसे निकालकर फिर कर्मयोगमें प्रवृत्त होनेकी आज्ञा क्यों देते हो? वेदमें भी भगवद्भक्त भगवान्से प्रार्थना करते हैं, हे परमात्मन् ! आप हमें सांसारिक अपराधोंका नाश करो । अपने अपराधोंके लिये क्षमा मांगी है और शुभ कर्ममें प्रवृत्त होनेकी प्रार्थना की है ।

(२) व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥
(भगव. अ. ३, श्लो. २)

अर्थ– हे भगवन् ! (व्यामिश्रेण इव) दो प्रकारके मिले हुए वचनोंके समान (वाक्येन) वाक्यसे तुम (मे) मेरी (बुद्धिम्) अल्पबुद्धिको (मोहयसि+इव) मोहित करनेवालेके समान क्यों मोहमें डालते हो ? इसलिये (तत्) इन दोनोंमें जो श्रेष्ठ हो (एकम्) उसी एकको (निश्चित्य) निश्चय करके (वद) कहो (येन) जिससे (अहम्) मैं (श्रेयः) परम कल्याणरूप मोक्षको (आप्नुयाम्) प्राप्त होऊं ॥२॥

वेदगीता (मंत्रः)

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः । पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥
(ऋ. ७।१००।२)

अर्थ– हे (एवयावः !) भक्तोंकी प्राप्त होनेयोग्य कामनाओंको प्राप्त करानेवाले परमात्मन् ! हे (विष्णो !) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (त्वम्) तू (विश्वजन्याम्) सब जीवोंके हित करनेवाली (अप्रयुताम्) निर्दोष (सुमतिम्) ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनोंमें जो श्रेष्ठ बुद्धि हो उसे (दाः) मुझे दो। (यथा) जिस प्रकार (सुवितस्य) अच्छी तरहसे प्राप्त होनेयोग्य (भूरेः) बहुत (अश्वावतः) वेगवान् (पुरुश्चन्द्रस्य) चंद्रकी तरह अत्यन्त शीतल करनेवाले और आनन्ददायक (रायः)

×जनार्दनः–सर्वैः जनैः अर्द्यते याच्यते स्वाऽभिलषितसिद्धये इति जनार्दनः ।

ज्ञानात्मक धनका (पर्चः) मुझमें सम्पर्क हो जावे ॥२॥

तुलना— गीतामें अर्जुनने भगवान्से पूछा है कि मुझे आप द्विविधामें क्यों डालते है? कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनोंमेंसे जो श्रेष्ठ हो उसे उपदेश दें। वेदमें भी शुभमतिकी प्रार्थना परमात्मासे की गई है और ज्ञानोपलब्धिके सम्बन्धकी याचना की गई है।

(३) लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥
(भगव. अ. ३, श्लो.३)

अर्थ— (अनघ) हे निष्पाप यद्वा विशुद्धान्तःकरण अर्जुन! (अस्मिन् लोके) इस लोकमें (पुरा) सृष्टिके आदि में अथवा पहिले उपदेशमें (मया) मैंने (द्विविधा) दो प्रकार की (निष्ठा) ब्रह्मनिष्ठा (प्रोक्ता) कथन की है (सांख्यानाम्) आत्मज्ञानियोंकी (ज्ञानयोगेन) ज्ञानयोगसे(योगिनाम्) कर्मयोगियोंकी (कर्मयोगेन) कर्मयोगसे अर्थात् दोनोंके लिये यह दोनों निष्ठायें पृथक् पृथक् वर्णन की गई हैं ॥३॥

वेदगीता (मंत्रः)

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः। आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥ (ऋ. १०।७१।७; निरु. १।९)

अर्थ— अक्षण्वन्त इति=(अक्षण्वन्तः) इंद्रियोंवाले अर्थात् अपने अपने इंद्रियोंकी वृत्तिके अनुकूल कर्मयोगी और (कर्णवन्तः) गुरुजीकेसे उपदिष्ट शब्दोंको श्रोत्रेन्द्रियसे सुननेवाले ज्ञानयोगी, ऐसे दो प्रकारकी निष्ठावाले पुरुष इस संसारमें देखे जाते हैं। इस प्रकार यह दोनों कर्मयोगी और ज्ञानयोगी (सखायः) समान ज्ञानवाले (मनोजवेषु) मनके वेगोंमें अर्थात् प्रज्ञादियोंमें (असमाः) समता न रखनेवाले अर्थात् कर्मयोगी कर्मोंके करनेको ग्रहण करते हैं, ज्ञानयोगी कर्मोंका संन्यास करते हैं, अतः एकसमान नहीं हैं। क्योंकि ज्ञानयोगका मार्ग और प्रकार चलता है। कर्मयोगका मार्ग और प्रकार चलता है। उन दोनों निष्ठाओंमेंसे (त्वे) कई एक पुरुष (आदघ्नास ह्रदा इव) पुरुषके मुखतक आनेवाले जलोंको धारण करनेवाले तालावोंकी तरह ज्ञानयोगके मार्गमें प्रवृत्त होते हैं अर्थात् जैसे मुखतक जल आनेवाले तालाबमें स्नानादि कार्य मध्यमतया चल सकते हैं ऐसे मध्यम ज्ञानयोगसे ज्ञानयोगमें प्रवृत्त हो जाते हैं (त्वे) ऐसे कई एक (उपकक्षासः ह्रदा इव) कक्षामात्रतक जलवाले तालावोंकी तरह कर्मयोगके मार्गमें प्रवृत्त होते हैं स्नात्वा!×) स्नानके योग्य (ह्रदा इव) तालाबोंकी तरह पूर्णज्ञानी ज्ञानयोगसे और पूर्ण कर्मयोगी कर्मयोगसे (ददृश्रे) अपने अपने पृथक् पृथक् मार्गपर चलते हुए दिखाई देते हैं ॥७॥

तुलना– गीतामें ज्ञानयोग और कर्मयोगका पृथक् पृथक् मार्ग बताया गया है। वेदमें अक्षण्वन्तःसे इन्द्रियोंद्वारा देखकर काम करनेवाले अर्थात् कर्मयोगी और कर्णवन्तसे श्रोत्रेन्द्रियसे ज्ञानका उपदेश सुनकर कामकरनेवाले अर्थात् ज्ञानयोगी, यह दो मार्ग पृथक् पृथक् दिखाये हैं। यही वर्णन मुनिवसिष्ठजीने भी योगवासिष्ठमें श्रीरामचन्द्रजीको कहा है—

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥१॥
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्त्वनिश्चयः।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः ॥२॥

अर्थ– हे राघव! योग अर्थात् कर्मयोग और (ज्ञानं) ज्ञानयोग यह दोनों क्रम चित्तवृत्तिके नाश कर देनेके निमित्त हैं। कर्मयोगसे चित्तवृत्तियोंका विरोध और ज्ञानयोगसे आत्मसाक्षात्कार होता है। इनमें किसीको कर्मयोग असाध्य है और किसीको ज्ञानयोग असाध्य है। इस कारण शिव भगवान्ने यह दो क्रम कथन किये अर्थात् इन दोनोंमें जिस प्राणीसे जो साध्य हो, उसीका ग्रहण करे। जो पूर्वजन्ममें कर्मयोगकी पूर्ति कर चुका है, उसके लिये ज्ञानयोग और जिसने पूर्वजन्ममें कर्मयोग पूर्ण नहीं किया वा कर्मयोग करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया, उसके लिये कर्मयोग है।

(४) न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥
(भगव. अ. ३।४)

अर्थ — (पुरुषः) कोई पुरुष (कर्मणाम्) कर्मोंके

× स्नात्वाः–' स्नातेः कृत्यार्थे त्वन् प्रत्ययः, स च अर्हे कृत्यचश्चेत्यर्हार्थे च भवति।

(अनारम्भात्) विना आरंभ किये (नैष्कर्म्यम्) निष्कर्मता-की अवस्थाको अर्थात् मोक्षको (न) नहीं (अश्नुते) प्राप्त हो सकता है। (च) तथा (संन्यसनात् एव) एकाएक कर्मको छोड देनेसे भी (सिद्धिम्) सिद्धि अर्थात् मोक्षको (न) नहीं (सम्+अधिगच्छति) लाभ कर सकता है ॥४॥

वेदगीता (मंत्रः)

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा। देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥

(वा. य. ३।४७)

अर्थ— (मयोभुवा) सुखके उत्पन्न करनेवाली अर्थात् सुख और मंगलके करनेवाली (वाचा) वेदोपदिष्ट वाणी (सह) के साथ (कर्मकृतः) लौकिक वैदिक कर्मोंको करनेवाले (कर्म) अपने अपने वर्णानुसार वेदविहित लौकिक वैदिक कर्मोंको (अक्रन्) करते हैं न कि कर्मोंका परित्याग करते हैं। वही (सचाभुवः) कर्मयोगका साथ साथ आश्रय करनेवाले पुरुष (देवेभ्यः) ईश्वरनिमित्त (कर्म) नित्यनैमित्तिक कर्मको (कृत्वा) यथा-विधि करके (अस्तम्) सुखात्मक घर अर्थात् शान्तिधामको (प्रेत) प्राप्त हो जाते हैं ॥४७॥

तुलना- गीतामें कर्म न करनेवाले तथा शास्त्रविहित कर्मोंके परित्याग करनेवालेकी निन्दा की है। अर्थापत्तिसे कर्म करनेवालों-की प्रशंसा की गई है। वेदमें यथाशास्त्र कर्म करनेवालोंकी शान्तिधामकी प्राप्ति बताई है, अर्थापत्तिसे कर्म न करनेवालोंकी निन्दा बताई है।

(५) **न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥**

(भगव. अ. ३, श्लो. ५)

अर्थ- (हि) क्योंकि (प्रकृतिजैः गुणैः) प्रकृतिसे उत्पन्न सात्विक, राजस, तामस तीनों गुणोंके स्वभावके प्रभावसे (सर्वः) सब छोटे स्थावर जंगम (अवशः) परतंत्र होकर (कर्म) कुछ न कुछ कर्म (कार्यते) करते ही रहते हैं। इसलिये (कश्चित्) कोई विद्वान् अथवा मूर्ख प्राणी (जातु) किसी अवस्थामें (क्षणमपि) क्षणमात्र भी (अकर्मकृत्) विना कर्म किये (न हि तिष्ठति) चुप बैठ नहीं सकता ॥५॥

वेदगीता (मंत्रः)

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः।

(अथर्व. ६।२३।३)

अर्थ- (सवितुः) सबके उत्पन्न करनेवाले (देवस्य) ज्योतिः-स्वरूप परमेश्वरकी (सवे) सृष्टिमें (मानुषाः) [यहां मानुष शब्द जीवमात्रका ज्ञापक है] स्थावर जंगम सब प्राणिमात्र (कर्म) अपने अपने कर्मको (कृण्वन्तु) करें अर्थात् कोई प्राणी निष्कर्म न रहे। जैसे उपनिषद्में भी कहा है—

वाग्वै ग्रहः स नाम्नातिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामान्यभिवदति। जिह्वा वै ग्रहः स रसेनाति-ग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि रसान् विजानाति। चक्षुः वै ग्रहः स रूपेणाति ग्राहेण गृहीतः चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति। श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनातिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दान् शृणोति। हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोति ॥

(बृह. ३।२।३।६-८)

अर्थ- वाक् इन्द्रिय जो ग्रह है वह अपने नाम अर्थात् बोलनेयोग्य विषयरूप अतिग्रहसे पकडा हुआ " वचनद्वाराही (नामानि) सर्व शब्दवाक्यमात्रका उच्चारण करता है। जिह्वा जो ग्रह है, वह अपने अतिग्रहरससे पकडा हुआ जिह्वा द्वारा षड्रसोंके स्वादको जानता है। (चक्षुः) आंख जो ग्रह है वह अपने अतिग्रहरूपसे पकडा हुआ चक्षुःसे सब रूपोंको देखता है। (श्रोत्र) कान जो ग्रह है, वह शब्दरूप अपने अतिग्रहसे पकडा हुआ श्रोत्रद्वारा शब्दोंको सुनता है। (हस्तः) हाथ जो ग्रह है वह कर्मरूप अपने अतिग्रहसे पकडा हुआ हाथोंसे कर्मोंको करता है।

तुलना- गीतामें भगवान्ने सिद्ध किया है कि प्रत्येक प्राणी प्रकृतिके वशमें होकर परतंत्र हुए हुए अपने अपने कर्मोंको करते ही रहते हैं संसारमें निष्कर्म कोई नहीं बैठता। वेदमें भी परमात्माकी सृष्टिमें सब प्राणी कर्म करें, कोई निष्कर्म न रहे, इसी बातका प्रतिपादन उपनिषद्में भी किया गया है कि इन्द्रियां अवश होकर अर्थात् दूसरेके वशमें पडकर सब प्रकारकी क्रियाओंको करती रहती हैं।

(६) **कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥**

(भगव. अ. ३, श्लो. ६)

अर्थ- (यः) जो (विमूढात्मा) कार्याकार्य-विवेकसे रहित अथवा रागादि दोषोंसे दूषित अन्तःकरणवाला

(कर्मेन्द्रियाणि) हाथ पांव जिह्वा इत्यादि कर्मेन्द्रियोंको (संयम्य) रोककर (मनसा) मनसे (इन्द्रियार्थान्) विषयोंको (स्मरन्) स्मरण करता हुआ (आस्ते) चुप बैठ जाता है, तो (सः) वह (मिथ्याचारः) झूठे आचारवाला दम्भी, कपटी, पापात्मा (उच्यते) कहा जाता है ॥ ६ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

३२ ३२ ३१ २र ३१ २र३ १२
एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२३ २३ १२
अव्यं वारं वि धावति॥ (सा. १२८०; ऋ. ९।२८।१)

अर्थ- (एषः) यह मूढ पुरुष (वाजी) वाक्पाणिपादादि कर्मेन्द्रियोंसे चलनेवाला (नृभिः) चक्षुरादि नेताओंसे (हितः) धारण वा पालनपोषण किया हुआ (विश्ववित्) सब इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला (मनसः पतिः) अन्तःकरण अर्थात् मानसिक वृत्तियोंके पीछे चलनेवाला हुआ हुआ (अव्यम्) सर्वदा रहनेवाला " गड्डरिका प्रवाह " की तरह वार वार अथवा (वारं) यथाक्रम [मरनेके अनन्तर जन्म, जन्मके अनन्तर मरण] इस क्रमको अथवा (वारम्) संसारमें जन्ममरणरूपी युद्धकी ओर (वि-धावति) विविध प्रकारसे दौडता रहता है । उपनिषद्में भी कहा है-

य इह कपूयचरणाऽभ्यासो ह यतंते, कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥ (छान्दोग्य. ५।१०।७)

अर्थ- जो प्राणी श्रेष्ठ कर्मोंको परित्याग कर (कपूय) निकृष्ट कर्मोंको करता है वह नीच योनियोंमें अर्थात् कुत्ता, सूअर, चाण्डाल, इत्यादि योनियोंमें उत्पन्न होता है । इसलिये जो विना आत्मविचार केवल कौतूहल करके कर्मोंको त्याग बैठता है वह पतित होकर नीच योनियोंमें जन्म पाता है ॥

तुलना— गीतामें दिखावेके लिये कर्मोंको छोडकर मनसे पदार्थोंको स्मरण करना कपटी होनेका मूल कारण है और मूर्खताका मूल स्वरूप है । वेदमंत्रमें भी कर्मेन्द्रियोंके विषयोंको मनमें स्मरण करनेवाला मूर्ख पुरुष वारंवार इस संसारमें जन्ममरणकी ओर जाता रहता है । यही बात उपनिषद्में पापाचारी पुरुष वारंवार नीच योनिमें जन्म लेता रहता है ।

(७) यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥
(भगव. अ. ३, श्लो. ७)

अर्थ- (अर्जुन !) हे अर्जुन ! (यः) जो प्राणी (मनसा) मनसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (नियम्य) वशमें करके (असक्तः) कर्मोंके फलोंकी आशासे रहित हुआ हुआ (कर्मेन्द्रियैः) हाथ पांव, आदि कर्मेन्द्रियोंसे (कर्मयोगम्) नानाप्रकारके निष्कामकर्मोंका (आरभते) अनुष्ठान करता रहता है (सः) वही विवेकी चतुर पुरुष (विशिष्यते) विशेष है । अर्थात् उस प्राणीसे श्रेष्ठ है जो आलस्यवश कर्मोंको छोड मिथ्या संन्यासी बन मनसे सर्व प्रकारके विषयोंकी अभिलाषा करता रहता है ॥ ७ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा ।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥
(वा. य. ३।४७)

अर्थ— (सचाभुवः) कर्मेन्द्रियोंके साथ रहनेवाले अर्थात् कर्मेन्द्रियोंसे श्रौत-स्मार्त-धर्मको साथ ही करनेवाले (कर्मकृतः) जो कर्मयोगी पुरुष (मयोभुवा) सुखोंके उत्पन्न करनेवाली (वाचा) वाणीके (सह) साथ सब वागादि इन्द्रियोंसे (कर्म) आसक्त होकर कर्मको (अक्रन्) करते हैं । वह पुरुष (देवेभ्यः) केवल इन्द्रियोंकी सामान्य प्रवृत्ति मात्रके लिये (कर्म) श्रौत स्मार्त कर्मोंको करके (अस्तम्) सुखमय घरको (प्रेत) प्राप्त होते हैं । यथा च उपनिषद्—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । (कठो. २।२।११)

अर्थ— जैसे सूर्य सब शुद्ध अशुद्ध वस्तुओंको देखनेसे दूषित नहीं होता इसी प्रकार निर्मल अन्तःकरणवाला इन्द्रियोंसे बाहरके सब व्यवहार करता हुआ दूषित नहीं होता ।

तुलना— गीतामें मनसे इन्द्रियोंकी दुष्प्रवृत्तिको रोककर सांसारिक स्वाभाविक कर्ममात्र करनेवाले लिम्पायमान नहीं होतें ।

वेदमें आसक्त होकर कर्म करना मुक्तिधामकी प्राप्ति कही गई है और यही बात उपनिषद्ने भी प्रमाणित की है ।

(९) सम्राट् गोविंदराज तृतीय (राष्ट्रकूट)

(लगभग खिस्ताब्द ७९४ से ८१४)

सम्राट् हर्षवर्धनके बाद कन्नौजमें ' वर्म ' (राज्यश्रीका घराना) बंगालके ' पाल ' तथा भिन्नपालके ' प्रतिहार ' आदि भिन्न भिन्न वंशोंके राजाओंकी उठापटक जारी थी। अपने प्रदेशका शासन करते हुए कन्नौजका राज्य भी अपने हाथमें रखनेवाले पाल-प्रतिहारों तथा पहलेके ' वर्म ' वंशके राजाओंको जीतकर दक्षिणके ' राष्ट्रकूट ' सम्राटोंने सब दूर अपना अधिराज्य प्रस्थापित किया। उत्तर भारतके दिग्विजयके बारेमें राष्ट्रकूटोंने आंध्र राजाओंके कार्यको मानो दुहराया था।

राष्ट्रकूट पहले प्रांताधिकारी और बादमें (दक्षिण गुजरातके चालुक्य साम्राज्यके) मांडलिकके नाते विदर्भमें थे। उसके बाद खिस्ताब्द ७५० के लगभग चालुक्य राजा दुर्बल होनेपर राष्ट्रकूट स्वतंत्र राजा बने। अधिक समय बीतनेपर वे महाराष्ट्रमें आये; वहाँ उन्होंने चालुक्योंका राज्य जीत लिया।

राष्ट्रकूट राजवंशका तेरहवें पुरुष ' ध्रुवराज 'ने अपना तीसरे बेटे ' गोविंदराज 'को सभी पुत्रोंमें सुयोग्य जानकर उसे अपने सामनेही युवराजपद दे दिया। वह पिताके बाद सिंहासनपर बैठा। फिर भी उसके बडे भाई ' स्तंभावरण लोक 'को अपना हक मारे जानेपर दुःख हो रहा था। कुछ दिनोंके बाद अन्य राजाओंकी सहायतासे उसने राजा बननेकी चेष्टा की। गोविंदराजने पूरी सिद्धता की और उससे लोहा लिया। उसमें 'स्तंभराज' पकडा गया; किन्तु उदार मनसे उसे क्षमा कर मैसूरके पास ' गंगवाडी 'में सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। तबसे दोनो भाइयोंमें अच्छा सलूक रहा। कहाँ गोविंदराज और कहाँ भ्रातृहत्यारा औरंगजेब !

इसके बाद इस घरेलू झगडेसे लाभ उठा चाहनेवाले राजाओंको ठीक करनेके लिए गोविंदराज निकल पडा।

सबसे पहले, पिताके कैदमें रखे गंगवाडीके जिस ' शिवमार ' राजाको दया कर स्वयं गोविंदराजने मुक्त किया था उसे पकड फिरसे कैदमें डाला। उसके बाद कांचीके पल्लवोंको दो बार हराया। उसी तरह 'विक्रमादित्य' चालुक्योंको हराकर, उनके राजाको पकड अपने घोडोंके तबेलोंको बुहारनेका काम दिया। इन कडे उपायोंसे अपने मांडलिकों तथा शत्रुओंपर धाक जमायी। कुछ समयके बाद चालुक्य विजयादित्य राजासे कुछ खिराज लेकर उसे छोड दिया।

दक्षिण भारतमें अपनी साम्राज्य-सत्ता इस तरह दृढ करनेके बाद वह अपने पिताके समान उत्तर-दिग्विजयके लिए चल पडा। उस समय कन्नौजमें 'चक्रायुध' बंगालमें 'धर्मपाल और राजस्थानमें ' नागभट्ट ' उत्तर भारतके प्रमुख शासक थे। चक्रायुध कमजोर होनेके कारण ' नागभट्ट 'ने उसकी सत्ता धीरे धीरे संकीर्ण कर दी थी। इसीसे गोविंदराजने पहले नागभट्टको हराया। यह मालूम होतेही चक्रायुध गोविंदराजके सामने झुक गया। उसके बाद बंगालपर चढाई की तब वहाँका शासक ' धर्मपाल ' भी उसकी शरणमें आ गया। अभिलेखोंमें लिखा है कि ' राष्ट्रकूट ' सेनाकी धूमने हिमालयकी गुफाएँ गूँज उठीं। इस बडी चढाईमें केवल मालवा-प्रांत राष्ट्रकूट साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया जहाँ अन्य राजाओंसे गोविंदराजने मात्र खिराज बटोर लिया।

राष्ट्रकूटोंके इस उत्कर्षसे कांचीके पल्लव, मदुराके पांड्य एवं मलबारके केरल आदि छोटे मोटे राजा ईर्ष्या करने लगे। गोविंदराज जब दूर गया था तब इन्होंने उसका अधिकार ठुकरा देनेकी चेष्टा की। संवाद पहुँचतेही सम्राट् गोविंदराज बिजलीकी गतिसे गुजरातसे मैसूरतक आया और उसने सबको ठीक किया। इस बातको सुननेपर सिंहलके राजाने उसका माण्डलिकत्व

स्वीकारकर लिया।

लगभग सन ८१२ में राष्ट्रकूटोंकी धाक हिमालयसे सिंहलतक और भडूचसे बंगालतक खूब जम गयी थी। एक अभिलेखमें लिखा है कि श्रीकृष्णजन्मके प्रभावसे जिस तरह यदुवंश अजिंक्य बना, उसी तरह गोविंदराजके शासक होनेसे 'राष्ट्रकूट' वंश अजेय बना।

'राष्ट्रकूट' जब विदर्भमें थे तब 'इन्द्रराज' नामक एक राष्ट्रकूट राजाने गुजरातके चालुक्योंकी सहायता कर सन ७३५में सिंधके अरबोंकी चढाई रोक दी। इसके बाद उनकी धाकसे अरबोंने व्योपारही केवल जारी रखा; राजनैतिक या धार्मिक आक्रमण करनेका फिरसे साहस नहीं किया।

राष्ट्रकूट-वंश खिस्ताब्द ७५० से ९७७ तक राज करता था। इन सवादो सौ वर्षोंमें सिंधके कुछ हिस्सेको छोड समूचा भारत स्वतंत्र और संपन्न था प्रत्युत भारतके बाहर भी हिंदुसभ्यता और हिंदुराज्योंका बोलबाला था। अफगानिस्तानके शासक हिंदू थे पूरबी द्वीपोंमें आंध्र, तामिल आदि प्रांतोंके हिंदुराजा ग्यारहवीं सदीतक राज करते थे, यह हम पहले बता चुके हैं। व्यापार तथा विद्या की काफी उन्नति हो चुकी थी। हरून-अल्-रशीद जैसे खलीफा बगदादके औषधालयोंमें हिंदु अफसर नियुक्त करते थे। चरक और सुश्रुतके आर्य वैद्यकीय ग्रंथोंके अनुवाद अरबी भाषामें दो ब्राह्मणोंने किये थे। दसवीं शतीमें 'अलबेरूनी' नामक एक मुसलमान प्रवासी भारतमें आया हुआ था। वह लिखता है—

मैंने बहुत भाषाओंके और अनेक देशोंके लोगोंसे अंकों की जानकारी प्राप्त की; किन्तु कहीं भी हजारके आगे की किसी संख्याका नाम न मिला. हिंदुलोग अठारह स्थानोंतक (परार्धतक = १० हजार दशलक्ष-कोटी) संख्या लिख सकते हैं' हिंदुओंकी 'दशमलव' संख्या-लेखन-पद्धति पहले अरबोंने सीखी और उनसे यूरोपियनोंने सीखी। अरबीमें 'आंकडे' के लिए 'हिंदसा' शब्द है, जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

भारतकी मलमल तथा अन्य कारीगरीकी चीजोंको बगदादके दरबारमें बडा महत्त्व दिया जाता था। यूरोपमें भी शार्लमेन जैसे सम्राट् भी भारतीय कारीगरीपर रीझ जाते थे।

राष्ट्रकूट शासक तालाब, नहर तथा मंदिर बनवानेके लिए सरकारी खजानेसे बहुत खर्च करते थे। वेरूळके चट्टानोंमें खुदवा कर बनाया हुआ शिवालय (कैलास लेणा) विशाल तथा सुन्दर होकर संसारके अत्यंत प्रसिद्ध शिल्पाकृतियोंमेंसे एक है। इसे 'कृष्णराज' राष्ट्रकूटने बनवाया। वेरूळकी गुफाओंने (लेणाओंने) राष्ट्रकूटोंका नाम अजरामर कर दिया है। सम्राट् गोविंदराज (३य)ने श्रीभवन अर्थात् मालखेडका सुन्दर नगर बसाकर उसे राजधानी बनाया। देवमंदिरों और विद्वान् ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेमें काफी रकम खर्चकी जाती थी। विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियाँ, बिना किसी शर्तके मिलही जाती थीं; प्रत्युत सरकारी जागीरोंकी आमदनी तथा धनी लोगोंके दानोंसे कई विद्यार्थियोंको भोजन तथा वस्त्र मिल जाते थे।

राष्ट्रकूटोंके राज्यप्रबंधसे उस समयकी हिंदु जनताके राजकीय विचारोंको हम जान सकते हैं। राज्यके सभी गाँवोंके बालिग तथा सम्भ्रान्त सज्जनोंको अपने गाँवके कर्मचारियोंकी गतिविधिका निरीक्षण कर सार्वजनीन कामोंपर ध्यान देनेकी छूट थी। इन सज्जनोंको 'महाजन' या 'ग्राममहत्तर' कहा जाता था। जिला या प्रांतके प्रमुख नगरमें 'विषय महत्तर' नामक लोकसभाएँ होती थीं। इनके द्वारा जनताके विचार शासकोंको बताये जाते थे। स्वयं 'सम्राट्' अपना काम धर्मशास्त्रके नियमों, रूढीसे प्राप्त हकों एवं मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार किया करते थे। तिसपर भी कोई सम्राट् मनमानी करे तो उसे माण्डलिकों तथा जनताके क्रोधकी बलि बनकर (गोविंदराज चतुर्थके समान) राज छोडना पडता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट राजा अ-नियंत्रित तानाशाह नहीं थे और उनकी हिन्दुप्रजा भी, बहुत राजनिष्ठ होनेपर भी निरीह जानवरोंके समान दबाई नहीं जा सकती थी। चंद्रगुप्त मौर्यसे अबतक वर्णित अनेक राजाओंके जीवनवृत्तांतोंसे यही बात निखर आती है।

सम्राट् गोविंदराज (३ य) सन ८१४में स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद उसका पुत्र 'अमोघवर्ष' राजगद्दीपर बैठा। अरब यात्री सुलेमानने उसको संसारके चार महान् सम्राटोंमें एक बताया है।

(१०) सम्राट् पृथ्वीराज चौहान



मालखेडके राष्ट्रकूटोंका साम्राज्य टूट जानेपर अगली १।२ सदियोंतक भारतमें कई छोटे छोटे हिन्दु-राज्य चल रहे थे। अफगानिस्थानका हिन्दुराज नष्ट होकर वहाँ एक तुर्की-वंश शासन कर रहा था। उस वंशके प्रसिद्ध ' महमूद ' सुलतानने भारतपर कई चढाइयाँ कीं। पंजाब-के अनंगपालने अनेक राजपूत राजाओंकी सहायतासे उसका प्रतिकार किया, किन्तु उसे हारना पडा और पंजाब-में इस्लामी सत्ता कायम हो गयी। महमूदके बाद उसके बेटे मसवूदने सतलज नदीपार कर ' हाँसी ' का किला जित लिया, पश्चिम-दक्षिण दिशामें बनारसतक हमले किये। कुछ समयके बाद दिल्लीके ' तोमार ' राजाओंने मुसलमानोंसे वह हाँसी किला तथा चौगिर्दका प्रदेश मुक्त करा लिया। बादमें सांबर (अजमेर)के विख्यात ' विसल देव चौहान ' राजाने मुसलमानोंको खदेडकर ' सतलज ' नदीतकके प्रदेशपर फिरसे हिन्दुओंका अधिकार प्रस्थापित किया। चौहान घरानेमें ' पृथ्वीराज 'का नाम सबसे अधिक विख्यात है। आज भी चितौडके अनेक राजाओंके समान ' पृथ्वीराज 'की कीर्ति राजस्थानमें गूँज रही है और राजपूतोंमें उसके लिये विशेष आदरभाव एवं गर्व है।

दिल्लीके तोमारोंका राज्य विसलदेव चौहानने सन ११५१में अपने अजमेरके राज्यमें शामिल कर लिया; अर्थात् ' पृथ्वीराज ' (११७९-११९२) अपने पिताके पश्चात् दिल्ली अजमेरके संयुक्त राज्यका स्वामी बना। ' सम्राट्-पद 'के लिये पहलेहीसे कन्नौज आदि राज्योंमें स्पर्धा थी। पृथ्वीराजके राजकी बागडोर सम्हालनेपर कन्नौजका जयचन्द्र राठोड तथा गुजरातका भीमदेव उपर्युक्त सम्राट्पदके लिए उससे झगड रहे थे। अलावा इसके ' पृथ्वीराज 'के पिता ' सोमराज 'को भीमदेवने मार डाला था। उससे बदला लेनेका मौका अबही उसके हाथ लगा। आबूकी राजकन्या 'इच्छिनी कुमारी'से ' भीमदेव ' अधिकारके बलपर शादी करना चाहता था। किन्तु आबू नरेशने उसकी माँगको ठुकरा दिया और अपनी रक्षाके हेतु पृथ्वीराजसे सहायता माँगी। इस प्रार्थनाको सहर्ष स्वीकार कर उसने भीमदेवपर चढाई की। तब पृथ्वीराजको पहले ' विजयश्री 'ने और फिर ' इच्छिनी कुमारी 'ने वरमाला पहनाई। (लोकहितवादी-कृत गुजरातका इतिहास)।

इसके बाद महोवा (बुंदेलखण्ड)के राजा परमार्दिदेव-पर पृथ्वीराजने चढाई की। वहाँ भी उसे विजय मिली, किन्तु इस युद्धमें दोनों दलोंके हजारों वीर खेत रहे।

भारतपर मुसलमान आक्रमण करनेको थे तब राजपूत राजाओंने उसपर ध्यान न देकर इस तरहके भयंकर युद्धोंमें अपनी राष्ट्रीय सामर्थ्यको खपाकर जो हानि की उसपर बडा रंज होता है। राजपूती कन्याओंका स्वयंवर तथा राजाओंकी सम्राट् बननेमें होड किसी समय उपयुक्त

होगी किन्तु बाहरी आक्रमणके समय ये बातें हानिकर सिद्ध होती हैं। कन्नौजकी संयुक्ताका स्वयंवर हुआ और पृथ्वीराजसे उसकी शादी हो गयी; किन्तु इससे दिल्ली और कन्नौजमें दुश्मनी पैदा हो गई, जो इन दोनों राज्यों और इनके कारण समूचे देशको पराधीन बनानेका कारण बनी।

अन्यान्य युद्धोंमें वीरता दिखाकर पृथ्वीराजने 'सम्राट्' पद प्राप्त कर लिया और फिर कुछ कालतक उसने दिल्लीमें सुखचैनमें दिन बिताये। आगे चलकर सन ११९१में अफगानिस्थानके मुहम्मद गोरीने भारत-पर हमला किया और पृथ्वीराजके राज्यसे कुछ स्थानोंपर कब्जा कर लिया। तब पृथ्वीराज भी बडी सेनाके साथ उसपर टूट पडा। थानेसरके पास घमासान युद्ध हुआ। पृथ्वीराजने मुहम्मद गोरीको पकड लिया इसकी खबर मिलतेही पठान भाग खडे हुए। सम्राट् पृथ्वीराजको विजय मिली। गोरीने पृथ्वीराजके शरणमें जाकर प्राण-याचना की; तब पृथ्वीराज उदारतासे उसे जाने दिया। इससे सिद्ध होता है कि उस समयतक राजपूती वीरता मुसलमानोंकी टक्करही की नहीं बल्कि अधिक मात्रामें थी।

सन ११९२ में, अपयशके कलंकको धो डालनेके हेतु मुहम्मद गोरी फिरसे पृथ्वीराजपर चढ आया। अब पृथ्वी-राजको मालूम हुआ कि उसकी उदारताका दान अयोग्य स्थानमें दिया गया था। किन्तु अब हाथ मलना बेकार था। युद्धके लिए सिद्ध होना पडा। इस समय पृथ्वीराज-की कुछ व्यक्तिगत भूलोंके कारण काफी राजपूतोंको सदमा पहुँचा था। हाँ, पृथ्वीराजकी वीरतापर उन्हे गर्व था और आदर भी! राजपूत स्वभावसे युद्धोत्सुक होनेसे राजपूतोंने उसकी अच्छी सहायता की। हमारे राजपूत नरेश बडे गर्वके साथ बताते हैं कि इस युद्धमें उनका कोई न कोई पुरखा खेत रहा था। पृथ्वीराजने वीरताकी पराकाष्ठा की; किन्तु भाग्यने पलटा खाया। पृथ्वीराज घायल हुआ; शत्रूने उसे कैद कर लिया; राजपूतोंकी पराजय हुई। पृथ्वीराजका अन्त इस युद्धमें किस तरह हुआ इस विषयमें काफी मतभेद हैं। अस्तु। इसके बाद, कहना नहीं होगा कि, मुसलमानी सिंहा-सनकी स्थापना दिल्लीमें हुई।

इस अंतिम युद्धके परिणामके कारण पृथ्वीराजकी योग्यतापर कुछ आंच नहीं आती।

'कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युः अनुक्रमात्' अर्थात् कीर्ति, जय, पराजय, तथा मृत्यु एकन एक दिन क्रमसे सबके भाग्यमें बदा है। फिर भी पृथ्वीराजकी सुयोग्यताको सुस्पष्ट करनेके लिये दिल्लीपर अधिकार करनेवाले मुसलमान शासकोंसे तुलना करें।

१. गुलामवंशके अल्तमशसे उत्तर पश्चिमी सीमान्त-पर मुगलोंके हमले शुरू हुए; अल्तमशके उत्तराधिकारियोंके नाकमें उन्होंने दम कर दिया।

२. मुहम्मद तुगलुकने तो मुगलोंको काफी धन देकर अपने राज्यको बचानेका जतन किया।

३. तैमूरलंगकी चढाईके समय दिल्लीका सुलतान राजधानीको खुली छोड गुजरातमें भाग गया; दिल्लीकी निरपराधा प्रजाका कत्ले आम हुआ।

४ ईरानके नादिरशाहने मुगल बादशाहको कैदी बनाया; अनगिनत लूट मार और हत्याएँ की। उस नर-संहारको बंद करनेके लिये बादशाहको अपराधीक तरह हाथ बांधकर शत्रुसे दयाकी भीख माँगनी पडी।

इन सभी ऐतिहासिक घटनाओंको ध्यानमें रखकर देखा जाय तो मालूम होगा कि पृथ्वीराज तथा उसके साथी राजपूतोंने मुहम्मद गोरीसे जो भिडन्त की थी वह अवश्य अत्यंत गर्वकी बात थी। गोरीके साथ हुए दो युद्धोंकी जय-पराजय तो पृथ्वीराजके भाग्यरवीका मध्यकाल और अस्त मानना चाहिये। पृथ्वीराजके बाद उसके पुत्र 'रेणसी'को मुहम्मद गोरीने अपना माण्डलिक बना छोडा और उसके पास केवल सांबर (अजमेर)का राज्य रख छोडा। इस घरानेका नाम बादमें इतिहासमें कहीं नहीं चमका।

सम्राट् पृथ्वीराजके जन्म, राजा बनने तथा अन्तकालके समयके बारेमें भिन्न भिन्न मत हैं। फिर भी कहा जा स-कता है कि उसकी जीवन-लीला चालीस सालकी उम्रमें समाप्त हो गयी। इसका बहुतसा हिस्सा युद्धकार्यमें खर्च हुआ जिससे राज्यान्तर्गत सुख-शान्ति अथवा विद्याकी प्रगति इन बातोंकी ओर उसने अधिक ध्यान पहुंचाया

…ा दिखाई नहीं देता। फिर भी इतिहास जिन दो चार …तोंकी पुष्टि देता है, उनसे उसके राज्यशासनमें की …स्थिति कुछ न कुछ प्रकाशित होतीही है। अजमेरमें पृथ्वीराजके पूर्वही एक महान् संस्कृत विद्यालय स्थापित हो चुका था। परन्तु मुहम्मद गोरी उस गौरवशाली …द्यालयको अपनी आँखोंसे देख न सका; इसलिये …सने उस विद्यालयके स्थानपर एक महजिद बनवा डाली। …ही हतभाग्य स्थान आज 'ढाई दिनका झोपडा' इस …ामसे पहचाना जाता है।

पृथ्वीराजके दरबारमें चन्द नामका एक ख्यातनामा …वि था। उसने हिन्दीभाषामें 'पृथ्वीराज रासो' नामक …हाकाव्यकी रचना की, जिसका कि नायक स्वयं पृथ्वीराज …। हिन्दीभाषामें आदिकविका मान इसी चन्दको दिया …ता है। तोमार राजाओंने जो देहली नगर बसाया …, उसके बाहर और मजबूत चहार दीवारी बांधकर …थ्वीराजने उस नवीन नगरको 'पृथ्वीपुर' नाम दिया। आज भी उसके कुछ अवशेष 'नई दिल्ली'की नैर्ऋत्य दिशामें पाये जाते हैं। जो मीनार आज 'कुतब मीनार' इस नामसे पहचाना जाता है, उसका निर्माता कुत्बुद्दीन नहीं, चौहान राजा हैं। बिसलदेव चौहानने वह मीनार बंधवानेको प्रारम्भ किया, और इस प्रचण्ड कार्यको आखरी पृथ्वीराजने पूरा कर डाला। कई विद्वान् संशोधकोंका ऐसा मत है कि उस मीनारकी रचनापरसे तथा उसके आसमन्तमें मिलनेवाली निशानियाँ देखकर वह मीनार बिसलदेवने गिजनीके तुर्क राजाओंको पराजित कर उस विजयका स्मारक इस हेतुसे बांधा हुवा प्रतीत होता है। अथवा स्वयं पृथ्वीराजने अन्य किसी उद्देशसे उसे निर्माण कर हिन्दू कारीगरीका नमूना संसारके सम्मुख उपस्थित किया होगा, और कुत्बुद्दीनने देहली लेनेके बाद उसपर मुसलमानी कारीगरीके संस्कार किये होंगे।

Regd. No. B. 1463

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, औंध.